# शशांक

[ एक उपन्यास ]

लेखक
रवीन्द्रनाथ ठाकुर

कि ता ब म ह ल
इ ला हा बा द

बँगला उपन्यास माला

: सम्पादक :

श्रीकान्त व्यास



अनुवादक—

कृष्णवल्लभ

प्रथम संस्करण, सन् १९५६



प्रकाशक—किताब महल, ५६-ए, जीरो रोड, इलाहाबाद।

मुद्रक—निर्मल मुद्रणालय, ६६ ई, तुलाराम का बाग, इलाहाबाद।

# शर्मिला

स्त्रियाँ प्रायः दो प्रकार की होती हैं, यह मैंने कुछ पंडितों से सुना है। इनमें से एक प्रकार की स्त्रियाँ माँ-जाति की होती हैं और दूसरी प्रिया।

अगर ऋतुओं के साथ तुलना की जाय तो माँ होगी वर्षा ऋतु—वह जल देती है, फल देती है, ताप का शमन करती है, ऊर्ध्व लोक से अपने आपको विगलित कर देती है, शुष्कता को दूर करती है और अभावों को भर देती है।

और प्रिया वसन्त ऋतु के समान है। उसके रहस्य का कोई थाह नहीं और उसके मायामंत्र की मधुरता का अंत नहीं। उसकी चंचलता रक्त में जैसे तरंग उठा देती है और मन को उस रत्नमणि-जड़ित कक्ष में पहुँचा देती है, जहाँ सोने की वीणा में एक निभृत तार चुपचाप झंकार की प्रतीक्षा में पड़ा है—झंकार, जिससे सम्पूर्ण देह और मन में एक अनिर्वचनीय स्वर झंकृत हो उठता है।

शशांक की पत्नी शर्मिला 'माँ' जाति की स्त्री है।

बड़ी-बड़ी शांत आँखें, धीर-गम्भीर चितवन। उसकी स्निग्ध और श्यामवर्ण कांति किसी सजल श्यामल नवीन मेघ की भाँति सुन्दर और कमनीय है। माँग में सदा सिंदूर की रक्तिम रेखा सुशोभित रहती है।

साड़ी की किनारी काली और चौड़ी। दोनों हाथों में मोटे-मोटे कंगन, जिनके मुँह मगर के मुँह की तरह हैं और जो साज-सिंगार के बजाय सोहाग को अधिक प्रकट करना चाहते हैं।

पति के जीवन-लोक में ऐसा कोई दिशा-प्रदेश नहीं, जहाँ उसके साम्राज्य का प्रभाव न हो। पत्नी के अति स्नेह-प्रेम के कारण पति का मन भुलक्कड़ बन गया है। जरा-सी चिट्ठी-पत्री लिखते समय अगर फाउन्टेन पेन टेबुल के किसी ऐसे कोने में जा छिपा, जो जरा मुश्किल से दिखाई देता है तो पेन को फिर से खोजने का भार पत्नी को ही उठाना होगा। नहाते समय घड़ी कहीं उतार कर रख दी, और अब शशांक को ठीक से याद नहीं आता कि कहाँ रखी है। लेकिन पत्नी की नजर जरूर उसे खोज निकालेगी। अलग-अलग रंग के दो जोड़े मोजों में से एक-एक को पहन कर जब वह बाहर जाने की तैयारी करता तो उसकी पत्नी आकर उसकी गलती ठीक करती है। जब शशांक देशी महीनों के साथ अँग्रेजी तारीख जोड़ कर अपने मित्रों को निमंत्रण दे आता है और अचानक ही घर में अतिथियों का दल आ पहुँचता है तो उसे सँभालने की तात्कालिक जिम्मेदारी उसकी पत्नी की ही होती है! शशांक निश्चित रूप से जानता है कि अगर उसके दैनिक कार्य-कलाप में अगर कोई त्रुटि या खामी होगी तो उसकी पत्नी अवश्य ही उसे ठीक कर देगी। इसीलिए अब गलती करना जैसे उसका स्वभाव बन गया है। उसकी पत्नी स्नेहपूर्ण तिरस्कार के स्वर में कहती, 'अब मुझसे यह सब नहीं होता। क्या तुम कभी कुछ नहीं सीखोगे!' लेकिन अगर वह सीख ही लेता तो शर्मिला के दिन उस निर्जन भूमि की तरह ऊसर हो जाते जिसे कोई जोतता-बोता नहीं।

थोड़ी देर के लिए मान लीजिये शशांक किसी मित्र के घर दावत खाने गया है। रात के ग्यारह बज गये, या दोपहर हो आयी। ब्रिज के दाँव चले जा रहे हैं। अचानक मित्र लोग हँस पड़े, 'उठो मित्र, वह सम्मन लेकर चपरासी आ गया! अब तुम ज्यादा नहीं रुक सकोगे।'

वही पुराना जाना-पहचाना नौकर महेश। मूँछों के बाल पक गये हैं, लेकिन सिर के बाल काले ही हैं। मिरजई पहने है और कन्धे पर चारखाने का गमछा डाले है। बगल में बाँस की लाठी लिये। बोला, 'माई जी ने पुछवाया है कि बाबू यहाँ हैं या नहीं। माई जी को डर है कि कहीं लौटते समय अँधेरी रात में कुछ अनहोनी न हो जाय। इसीलिए साथ में एक लालटेन भी दी है।'

शशांक खीज कर ताश फेंक देता है और उठ खड़ा होता है। दोस्त फिकर करते हैं, 'हाय, बेचारा अकेला बेहिफाजत आदमी जो ठहरा! कौन इसकी सँभाल करेगा!' घर आकर शशांक अपनी पत्नी से जो बातचीत शुरू करता है वह न तो मीठी भाषा में होती है और न शांति के साथ। लेकिन शर्मिला चुपचाप सारी फटकार सुन लेती है। क्या करे, उससे चुप बैठते भी तो नहीं बनता। उसके मन में हमेशा यह आशंका बनी रहती है कि उसकी गैरहाजिरी में हर तरह की सम्भव-असम्भव विपत्ति उसके पति के विरुद्ध षड्यंत्र करती रहती है।

बाहर शायद कोई आया है, किसी काम से। और इधर हर क्षण अन्तःपुर से कागज की चिन्दियाँ आ रही हैं—'याद है न, कल तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं थी। आज सुबह-सुबह भूखे न बैठो, कुछ खा लो।'

शशांक नाराज होता है, लेकिन फिर उसे हार माननी ही पड़ती है। एक बार बहुत दुख के साथ उसने अपनी स्त्री से कहा, 'दुहाई है। चक्रवर्ती की घरवाली की तरह तुम भी किसी देवी-देवता का आसरा लो। तुम्हारी इतनी चिन्ता-चाकरी मेरे अकेले के लिए बहुत अधिक है। किसी देवता के साथ इसका साझा रहने से मेरा भार कुछ हल्का हो जायगा। तुम देवता के साथ जितनी ज्यादती करो, उसे कोई एतराज न होगा। लेकिन मनुष्य तो दुर्बल प्राणी है!'

शर्मिला बोली, 'हाय, हाय, एक बार काका जी के साथ जब मैं हरद्वार गई थी तब तुम्हारी क्या दशा हो गई थी, कुछ याद है?'

दशा शोचनीय हो गई थी, इसका किस्सा शशांक ने ही खूब नमक-मिर्च मिला कर अपनी पत्नी को सुनाया था। क्योंकि वह जानता था कि इस अत्युक्ति से शर्मिला को जितना दुःख होगा उतना ही उसे आनन्द भी आयेगा। अब वह उस दिन के मितभाषण का प्रतिवाद भला करे भी तो कैसे ? उसे चुप रह जाना पड़ा। और सिर्फ इतना ही नहीं, उसी दिन सुबह उसे जरा सर्दी-सी मालूम होने लगी और शर्मिला को कुछ शक हो गया। उसके कहने पर शशांक को दस ग्रेन कुनेन खानी पड़ी और ऊपर से तुलसी के पत्तों की चाय भी पीनी पड़ी। आपत्ति करने का कोई रास्ता ही नहीं था, क्योंकि एक बार ऐसी ही हालत में आपत्ति करके उसने कुनेन नहीं खायी थी और इसके नतीजे में बुखार भोगना पड़ा था। यह घटना शशांक के घरेलू इतिहास में अमिट अक्षरों में लिख गई थी।

शर्मिला घर में जिस प्रकार शशांक के आरोग्य और आराम के लिए चिन्तित रहा करती थी उसी तरह बाहर भी उसकी सम्मान-रक्षा के लिए उतनी ही सतर्क और सतेज रहती थी। एक घटना याद आ रही है।

एक बार शशांक और उसकी पत्नी घूमने के लिए नैनीताल गये। उनका डिब्बा पहले से ही पूरे रास्ते के लिए रिजर्व था। जंक्शन पर गाड़ी बदलने के बाद शशांक खाने-पीने की कुछ चीजें लेने के लिए बाहर गया और जब लौट कर आया तो उसने देखा कि एक वर्दीधारी सज्जन उन्हें बेदखल करने के लिए उद्यत हैं। स्टेशनमास्टर ने आकर एक जगत्प्रसिद्ध जनरल का नाम बताया और कहा कि असल में यह कम्पार्टमेंट उसके लिए ही रिजर्व था, गलती से दूसरा नाम चिपका दिया गया था।

शशांक ने आँखें फाड़ कर इधर-उधर देखा और फिर दूसरे कम्पार्टमेंट में जाने की तैयारी शुरू की। लेकिन तभी शर्मिला आकर

गाड़ी का रास्ता रोक कर खड़ी हो गई और गरज कर बोली, 'देखती हूँ कौन आकर मुझे उतारता है, बुलाओ तो अपने जनरल को !'

शशांक उस समय तक सरकारी नौकर था, ऊपरवाले अफसर के जातिभाई से बचबचाकर खतरे से दूर रहने का आदी हो गया था। वह हड़बड़ा कर बोला, 'अरे भाई, झमेला बढ़ाने से क्या फायदा, गाड़ी में और भी तो जगह है।'

लेकिन शर्मिला ने इस बात पर कोई कान ही नहीं दिया। आखिर-कार जब जनरल साहब रिफ्रेशमेंट रूम से नाश्ता वगैरह करके मुँह में चुरुट दबाये बाहर आये तो उस स्त्री की उग्रता देख कर चुपचाप हट गये। शशांक ने अपनी स्त्री से पूछा, 'कुछ जानती भी हो कितना बड़ा आदमी है ?'

उसने जवाब दिया, 'जानने की मुझे कोई गरज नहीं। मेरे डिब्बे में तुमसे बड़ा कोई आदमी नहीं हो सकता।'

शशांक ने पूछा, 'अगर वह अपमान करता तो ?'

वह बोली, 'तो तुम किस लिए हो ?'

शशांक शिवपुर से पास हुआ इंजीनियर है। घरेलू जीवन में उसकी ढिलाई कितनी भी क्यों न हो नौकरी में वह पक्का है। इसका खास कारण यह है कि उसके कर्म-स्थान में जिस ऊँचे ग्रह की दृष्टि पड़ी थी वह वही था जिसे आम जबान में बड़ा साहब कहते हैं। वह कोई नारी-ग्रह नहीं था। शशांक जिस समय एक्टिंग इंजीनियर के पद पर काम कर रहा था उस समय उसके लिए होनेवाली तरक्की का चक्का एकाएक दूसरी ओर घूम गया। उसकी योग्यता को लाँघ कर एक ऐसे कम उम्र के अँग्रेज युवक ने उसका आसन हड़प लिया जो जानकारी में भी उससे पीछे था। इस अँग्रेज युवक का यह अचिंतनीय आविर्भाव अधिकारियों के सबसे बड़े अफसर के सम्पर्क और सिफारिश के बल पर हुआ था।

शशांक ने समझ लिया कि इस व्यक्ति को अपने ऊपर के आसन पर बिठा कर उसे खुद नीचे बैठ कर सारा काम-काज सँभालना पड़ेगा। अधिकारियों ने उसकी पीठ ठोक कर कहा, 'वेरी सारी मजूमदार, जितनी जल्दी होगा हम तुम्हारे लिए भी उपयुक्त स्थान की व्यवस्था कर देंगे।' असल में बात यह थी कि वे दोनों ही फ्रीमेसन कानून के अन्तर्गत थे।

लेकिन आश्वासन और सान्त्वना के बावजूद सारा मामला शशांक के लिए अत्यन्त नीरस हो उठा। घर आकर उसने छोटी-बड़ी सब प्रकार की बातों में मीनमेख निकालना शुरू किया। अचानक उसे अपने पढ़ने-लिखने के कमरे में एक कोने में मकड़ी का जाला दिखाई दे गया, चौकी पर पड़ी हुई हरे रंग की चादर उसे बिलकुल पसन्द नहीं है, यह भी उसे अब अचानक याद हो आया। नौकर बरामदे में झाड़ू दे रहा था। धूल उड़ने का बहाना बना कर उसे भी जोर की फटकार बता दी। धूल रोज ही उड़ती थी, लेकिन यह फटकार आज नई चीज थी।

अपने इस असम्मान की खबर उसने अपनी पत्नी को नहीं दी। उसने सोचा कि अगर उसके कान में यह बात पड़ेगी तो नौकरी के इस जाल में वह एक और उलझन पैदा कर देगी। बहुत सम्भव था कि वह बड़े अफसर से कुछ कहासुनी कर आती। खासतौर से उसे उस डोनाल्डसन पर तो बहुत ही अधिक गुस्सा है। एक बार वह सर्किट हाउस के बगीचे में बन्दरों का उत्पात शान्त करने गया था और उसने बन्दूक के छर्रों से शशांक की सोला हैट में छेद कर दिया था। कोई दुर्घटना नहीं हुई, लेकिन होते कितनी देर लगती! लोगों का कहना है कि दोष शशांक का ही था, यह सुन कर डोनाल्डसन पर शर्मिला का क्रोध और भी बढ़ गया। क्रोध का सबसे बड़ा कारण यह है कि बन्दर को निशाना बनाकर जो गोली दागी गई थी वह शशांक के ऊपर

आ पड़ी थी, विरोधियों ने इन दो बातों की समानता बैठा कर बड़ा मजाक बनाया था।

शशांक के छोटे पद पर नियुक्त हो जाने का समाचार शर्मिला ने खुद ही खोज निकाला। उसे अपने पति का यह रंग-ढंग देख कर यह जानते देर नहीं लगी कि कहीं से कोई काँटा उठ आया है। इसके बाद इसका कारण मालूम करने में उसे देर नहीं लगी। उसने किसी वैधानिक या कानूनी कार्रवाई का रास्ता नहीं पकड़ा, बल्कि वह सेल्फ डिटरमिनेशन —आत्म-निर्णय के रास्ते पर ही गई। उसने पति से कहा, 'अब और न रुको, काम छोड़ दो।'

नौकरी छोड़ देने से अपमान की जोंक तो छाती से खिसक जाती, लेकिन आँखों के सामने तो बँधी हुई तनख्वाह की हरियाली फैली हुई थी, जिसके पीछे पेंशन की एक अविचलित सुनहरी रेखा दिखाई दे रही थी।

जिस साल शशांक मौलि एम०एस-सी० के सर्वोच्च शिखर पर आरूढ़ हुआ था, उसी साल उसके ससुर ने शुभकर्म में विलम्ब करना उचित नहीं समझा और शशांक के साथ शर्मिला का विवाह हो गया। धनी ससुर की सहायता से ही उसने इन्जीनियरिंग पास की। उसके बाद उसके नौकरी में शीघ्र उन्नति का लक्षण देख कर उसके ससुर राजाराम बाबू अपने जामाता की भावी सफलताओं का अन्दाज लगा कर आश्वस्त हो गये। लड़की ने भी आज तक अनुभव नहीं किया कि उसकी दुनिया बदल गई। केवल इतना ही नहीं है कि ससुराल के घर में अभाव नहीं है, बल्कि उसके पिता के घर का रहन-सहन भी यहाँ ज्यों का त्यों मौजूद था। इसका कारण यह था कि इस पारिवारिक शासन की सारी व्यवस्था शर्मिला के अधिकार में ही थी।

उसके कोई सन्तान नहीं हुई और होने की आशा भी छोड़ दी गई है। पति की सारी की सारी कमाई उसके हाथ में आ जाती है। अगर

कभी विशेष जरूरत हुई तो घर की अन्नपूर्णा से दुबारा भिक्षा माँगने के सिवा शशांक के लिए कोई दूसरा चारा ही नहीं था। अगर माँगने का दावा अनुचित हुआ तो अर्जी नामन्जूर हो जाती है! और शशांक को सिर खुजला कर मान लेना पड़ता है। किसी दूसरी ओर से मधुर रस पाकर निराशा का अभाव पूरा भी हो जाता है।

शशांक बोला, 'नौकरी छोड़ देना मेरे लिए कुछ मुश्किल नहीं है। लेकिन तुम्हारे लिए सोचता हूँ कि तकलीफ तो तुम्हें होगी।'

शर्मिला ने कहा, 'उससे भी बड़ी तकलीफ तब होगी, जब अन्याय को निगलना पड़े और वह गले में ही अटक जाय।'

वह बोला, 'कुछ न कुछ तो करना ही होगा। निश्चित को छोड़कर अनिश्चित के लिए किस-किस गली की खाक छानता फिरूँ?'

'वह गली तुम्हें नहीं नजर आती। तुम नौकरी के बाहर की दुनिया को कुछ समझते ही नहीं।'

'समझता नहीं! यह क्या कहती हो तुम? यह संसार बड़ा भारी है। उसके सारे रास्तों की सर्वे करने कौन जायगा? और फिर इतनी बड़ी दूरबीन ही किस बाजार में मिलेगी?'

'तुम्हें बड़ी दूरबीन की जरूरत नहीं होगी। मेरे रिश्ते के मथुरा भैया कलकत्ते में एक बड़े कंट्रक्टर हैं। उनके साथ साझे में कारबार चलाने से दिन कट जायँगे।'

'साझा वजन में बराबरी का नहीं होगा। इधर के बटखरे में कमी पड़ेगी। अधूरी हिस्सेदारी के कारण पद की मर्यादा भी नहीं रह सकेगी।'

'नहीं, इस ओर भी किसी तरह की कमी नहीं पड़ेगी। तुम तो जानते हो कि पिता जी मेरे नाम से जो रुपया बैंक में छोड़ गये थे वह आज

सूद के कारण बढ़ गया है। अपने साझीदार के आगे तुम्हें छोटा नहीं बनना पड़ेगा।'

'वाह, ऐसा भी कहीं होता है! वह तो तुम्हारा रुपया है'—यह कह कर शशांक वहाँ से उठ गया—बाहर कोई उसका इन्तजार कर रहा था।

शर्मिला ने पति को खींच कर बिठा लिया। बोली, 'मैं भी तो तुम्हारी हूँ।'

फिर उसने कहा, 'अपनी जेब से पेन निकालो, और यह रहा कागज। लिख दो इस पर इस्तीफा। जब तक वह डाक में नहीं चला जायगा तब तक मुझे चैन नहीं पड़ेगा।'

'जान पड़ता है मुझे भी चैन नहीं मिलेगा।'

और उसने इस्तीफा लिख दिया।

दूसरे ही दिन शर्मिला कलकत्ते चली गई और मथुरा भैया के यहाँ पहुँची। कुछ अभिमान के साथ उसने कहा, 'तुमने किसी दिन भी अपनी बहन की खबर तक नहीं ली।' उसके सामने अगर कोई स्त्री होती तो वह उत्तर में कह सकती थी, 'तुमने भी तो नहीं ली।' लेकिन पुरुष के दिमाग में यह उत्तर नहीं आ सका। उसने अपना अपराध स्वीकार कर लिया। वह बोला, 'साँस लेने की तो फ़ुर्सत नहीं है। खुद भी जिन्दा हूँ या नहीं, इसी में शक हो जाता है। इसके सिवा तुम लोग भी तो हमेशा दूर ही दूर घूमते रहते हो।'

शर्मिला ने कहा, 'अखबार में पढ़ा कि मयूरभंज या मथुरगंज में कोई

पुल तैयार करने का काम तुम्हें मिला है। पढ़ कर कितनी खुश हुई ! उसी दिन मन में आया कि खुद जाकर मथुरा भैया को कांग्रेचुलेट कर आऊँ।'

'जरा सब्र करो बहन। अभी इसका समय नहीं आया है।'

मामला यह था कि वहाँ नकद रुपया लगाने की जरूरत थी। किसी धनी मारवाड़ी के साथ साझे में काम करने की बात थी। और अन्त में मालूम हुआ कि जैसी शर्तें हैं उनके अनुसार तो रूदेवाला हिस्सा मारवाड़ी को मिलेगा और उसके पल्ले पड़ेगा छिलका। इसलिए अब पीछे लौटने की चेष्टा हो रही थी।

शर्मिला व्यस्त होकर बोली, 'यह कभी नहीं होगा। साझे का काम करना हो तो हमारे साथ करो। ऐसा काम तुम्हारे हाथ से निकल गया तो बड़ा भारी अन्याय होगा। मेरे रहते यह नहीं हो पायेगा—तुम चाहे जो भी कहो।'

इसके बाद तो लिखा-पढ़ी में भी देर नहीं हुई। मथुरा भैया का मन भी ढीला पड़ा।

कारबार बड़ी तेजी से चल पड़ा। इसके पहले शशांक नौकरी के लिए काम करता था। उस जिम्मेदारी की सीमा परिमित थी। वहाँ दावा और देय दोनों समान वजन मिला कर चलते थे। वहाँ मालिक दूसरा था। यहाँ अपना प्रभुत्व अपने को ही चलाने लगा। दावी और देय एक ही जगह मिल गये। अब उसके दिन छुट्टी और काम के ताने-बाने से बुने हुए जाल की तरह नहीं रहे, अब वे ठोस हो गये। जो उत्तरदायित्व अपने मन से अपने ऊपर लाद लिया गया होता है, उसे इच्छा होते ही छोड़ दिया जा सकता है। इसीलिए उसका जी इतना कड़ा होता है। और कुछ नहीं तो पत्नी का ऋण तो पहले चुका ही देना होगा, फिर धीरे-धीरे चलने का मौका निकाला जायगा। बायें हाथ की कलाई पर घड़ी, सिर पर सोला हैट, आस्तीनें चढ़ी हुईं, खाकी पैंट पर चमड़े का कमरबन्द कसा हुआ, मोटे तल्लेवाला जूता, धूप से बचने के लिए आँखों पर रंगीन

चश्मा। —इस प्रकार शशांक कमर कस कर काम पर लग गया। पत्नी का ऋण जब चुकने आया तब भी उसका जोश कम नहीं हुआ—स्टीम का दम कम नहीं हुआ! मन तब तक गरम हो उठा था।

इसके पहले गिरस्ती में आय और व्यय की धारा एक ही नाले में बहती थीं। अब इसकी दो शाखाएँ हो गईं। एक गई बैंक की ओर और दूसरी आई घर की ओर। शर्मिला का पावना पहले की तरह ही है। वहाँ के लेन-देन का रहस्य शशांक को मालूम नहीं हुआ। उधर व्यवसाय का वह चमड़े से मढ़ा हुआ खाता शर्मिला के लिए भी एक दुर्गम दुर्ग की तरह था। इससे तो कुछ बनता-बिगड़ता नहीं, लेकिन पति के व्यवसायी जीवन का भ्रमण-पथ उसके संसार-चक्र के बाहर पड़ता था और इस प्रकार उस ओर से उसका विधि-विधान उपेक्षित रहता था।

वह गिड़गिड़ा कर कहती, 'इस तरह बहुत ज्यादती न करो अपने साथ—शरीर टूट जायगा।'

लेकिन इसका कोई असर नहीं होता। और आश्चर्य यह है कि शरीर भी नहीं टूटता। स्वास्थ्य की चिन्ता, आराम की कमी की शिकायत वगैरह कई प्रकार की घरेलू उत्कंठाओं की जबर्दस्त उपेक्षा करके शशांक बहुत तड़के सबेरे उठता है और सेकण्डहैंड फोर्ड गाड़ी को खुद ड्राइव करता हुआ निकल जाता है। कोई दो-ढाई बजे घर लौट कर आता है, डाँट खाता है और साथ ही साथ खाने को भी जल्दी-जल्दी हाथ चला कर खत्म करता है।

एक दिन उसकी मोटर दूसरी गाड़ी से लड़ गई। वह खुद तो बच गया लेकिन गाड़ी को चोट आ गई। उसे मरम्मत के लिए भेज दिया गया। शर्मिला चिन्तित हो उठी। भरे हुए गले से बोली, 'आज से तुम खुद गाड़ी नहीं चला सकोगे।'

शशांक ने हँस कर बात उड़ा दी और कहा, 'लेकिन दूसरे के हाथ ड्राइव कराने में भी तो यही खतरा है।'

एक दिन मरम्मत के काम की जाँच करते समय एक टूटे पैकिंग बाक्स की कोई कील जूते को छेद कर उसके पैर में घुस आई। अस्पताल जाकर पट्टी बँधाई और टीका लिया। उस दिन रो-धोकर शर्मिला ने कहा, 'कुछ दिन आराम करो।'

शशांक अत्यन्त संक्षेप में बोला, 'नहीं, काम!'

शर्मिला ने कहा, 'लेकिन—' और इस बार बिना उत्तर दिये ही शशांक पट्टी बाँधे हुए काम पर चला गया।

जोर-जबर्दस्ती की अब हिम्मत नहीं रही। अपने निज के क्षेत्र में भी अब पुरुष का जोर अधिक दिखाई दे रहा है। युक्ति तर्क और आरजू-मिन्नत सबके बाहर अब एकमात्र बात रह गई है, 'काम है।' शर्मिला बेकार ही चिन्तित हो के बैठी रहती थी। देर होते ही सोचती मोटर लड़ायी होगी।' धूप लगने से पति का मुँह लाल हो जाता था तब सोचती कि जरूर इंफ्लुएंजा हुआ है। डरती-डरती वह डाक्टर की बात उठाती थी—लेकिन पति का रुख देख कर रुक जाती। दिल खोल कर मन की बात कहने का भी आजकल साहस नहीं होता था।

शशांक देखते-देखते धूप में झुलस गया है और चिड़चिड़ा भी हो गया है। छोटी कसी हुई धोती, वैसे ही छोटे कसे हुए फुरसत के क्षण, चाल-ढाल तेज, लय और बातचीत भी चिनगारी की तरह संक्षिप्त। शर्मिला की सेवा भी इस तेज चाल के साथ लय मिला कर चलने की कोशिश करती है। अब स्टोव के पास कुछ खाना बराबर गरम रखना पड़ता है, क्योंकि न मालूम कब पति कह उठेंगे, 'चला, लौटने में देर होगी।' कार में सोडा-वाटर की बोतल और खाने की सूखी चीजों का एक छोटा-सा डिब्बा रखा रहता है। एक यू-डी-कोलोन की शीशी भी इस तरह रखी रहती है कि आसानी से नजर आ जाय। यह इसलिए कि हो सकता है कभी सिर में दर्द हो आये। गाड़ी लौटने पर वह देखती है कि

इनमें से कोई भी चीज इस्तेमाल की नहीं गई। यह देख कर उदास हो जाती है।

सोने के कमरे में साफ कपड़ा प्रति दिन बिलकुल सामने ही रखा जाता है। लेकिन फिर भी शशांक को सप्ताह में चार दिन धोती बदलने का मौका नहीं मिलता। घर-गिरिस्ती के बारे में बातचीत बहुत संक्षेप में करनी पड़ती है, बिलकुल उसी भाषा में जिसमें जरूरी तार लिखा जाता है। और वह भी चलते-चलते, पीछे से पुकारते-पुकारते, 'अजी, सुनो तो एक जरूरी बात है!' उसके व्यवसाय में शर्मिला का जो थोड़ा-सा सम्बन्ध था वह भी कट गया था, उसका सारा रुपया मय सूद के लौटा दिया गया था। सूद भी बाकायदा मापजोख कर हिसाब करके और रसीद लेकर दिया गया है। शर्मिला कहती, 'बाप रे, प्रेम में भी पुरुष अपने को पूरा नहीं मिला पाता। थोड़ी-सी जगह खाली छोड़ देता है। वहीं उसके पौरुष का अभिमान रहता है।'

लाभ के रुपये से शशांक ने भवानीपुर में अपने मन के अनुसार एक बड़ा-सा मकान खड़ा किया है। वह उसके शौक की ही चीज है। अब स्वास्थ्य और आराम की नई-नई योजनाएँ उसके दिमाग में आती हैं। उसका यह सब प्रयत्न होता है शर्मिला को अचरज में डालने के उद्देश्य से। शर्मिला भी चकित होने से नहीं चूकती। इंजीनियर ने मकान में कपड़े धोने की एक मशीन लगाई। शर्मिला ने घूम-फिरकर उसे देखा और उसकी खूब तारीफ की। वह मन ही मन बोली, 'कपड़े आज भी जिस तरह धोबी के घर जाते हैं, उसी तरह कल भी जायँगे। मैले कपड़ों का वाहन उस गदहे को तो समझ गई हूँ, लेकिन उनके इस वैज्ञानिक वाहन को नहीं समझ पायी हूँ।'

आलू के छिलके छुड़ाने वाली मशीन को देख कर वह चकित रह गई और बोली, 'आलू की रसदार सब्जी बनाने की बारह आना तकलीफ इससे जाती रहेगी।' बाद में सुना गया कि वह मशीन, फूटी देकची और

टूटी केतली वगैरह के साथ एक पुरानी टूटी-फूटी खाट पर आराम से रख दी गई है।

मकान बन कर जब तैयार हो गया तो उस स्थावर वस्तु के प्रति शर्मिला का रुका हुआ स्नेह बह चला। सुभीता यह था कि मकान पक्का बना था। उसे सजाने-सँवारने के काम में दो-दो नौकर पिल पड़े। उन्हें इस तरह कस कर काम करना पड़ा कि एक नौकर तो भाग ही गया। कमरों की सजावट शशांक को मन में रख कर की जाने लगी। बैठकखाने में वह आजकल बैठता ही नहीं था, फिर भी वहाँ उसकी थकी पीठ के आराम के लिये नये फैशन के कुशन सजाये गये। फूलदान भी एक नहीं अनेक। टेबुल पर, तिपाई पर, सब जगह। फूल कढ़े झालरदार आवरण। सोने के कमरे में आजकल दिन में शशांक का आना एकदम बन्द है, क्योंकि उसके आधुनिक पंचांग में रविवार भी सोमवार का जुड़वाँ भाई है। दूसरी छुट्टियों में भी जब काम बन्द रहता है तब भी वह कोई न कोई फुटकर काम निकाल ही लेता है। और अपने काम करने के कमरे में पतला कागज या बही-खाता लेकर बैठ जाता है। फिर भी पुराना नियम चल रहा है। उसी तरफ सोफे के सामने रेशमी चप्पल का जोड़ा तैयार है। पास ही पनडब्बे में पान सजा रहता है। एक ओर अलगनी पर पतले रेशम का कुर्ता टँगा रहता है, चुनी हुई धोती लटकती रहती है। आफिस के कमरे में दखल देने के लिए हिम्मत की जरूरत थी तो भी जब शशांक वहाँ नहीं होता तब शर्मिला हाथ में झाड़न लेकर वहाँ प्रवेश करती थी। वहाँ की हिफाजत से रखने लायक और न छूने की चीजों में भी एक सजावट लाने के अपने प्रयत्न से वह कभी बाज नहीं आती थी।

शर्मिला सेवा करती है, लेकिन आजकल उस सेवा का बहुत बड़ा भाग शशांक की नजर से ओझल रहता है। पहले उसका जो आत्मनिवेदन प्रत्यक्ष के लिए था अब उसका प्रयोग उसके प्रतीक के

लिए चल रहा है—घर-द्वार सजाने में, फूल-पौधे लगाने में, शशांक की बैठनेवाली कुर्सी को रेशम से ढँकने में, तकियों के पर्दों पर फूल काढ़ने में, आफिसवाली टेबुल के कोने में बिलौर की फूलदानी में रजनीगंधा के गुच्छे सजाने में।

उसे अपने आराध्य को पूजा की वेदी से दूर स्थापित करना पड़ा, लेकिन उसमें बहुत कष्ट भी हुआ। अभी कुछ दिन पहले ही उसे जो आघात लगा था, उसका चिन्ह अकेले में आँख के पानी से पोंछना पड़ा। उस दिन कार्तिक की उन्नीसवीं तिथि थी—यह शशांक का जन्म-दिन है। नियमानुसार बन्धु-बांधवों को निमन्त्रित किया गया। घर-द्वार को विशेष रूप से फूल-पत्तों से सजाया गया।

सबेरे का काम खतम करके शशांक घर लौट कर आया तो बोला, 'यह सब क्या मामला है, गुड़ियों का ब्याह है क्या ?'

वह बोली, 'हाय रे भाग्य, आज तो तुम्हारा जन्म-दिन है ! क्या यह भी भूल गये ? कुछ भी कहो, आज शाम को तुम बाहर नहीं जा सकते।'

'बिजनेस मृत्यु के दिन के अलावा और किसी दिन के सामने सिर नहीं झुकाता।'

'फिर कभी नहीं कहूँगी। आज सब लोगों को निमन्त्रण दे चुकी हूँ।'

'देखो, शर्मिला, तुम मुझे खिलौना बनाकर दुनिया भर के लोगों को बुला कर खिलवाड़ करने की कोशिश न करो।' इतना कह कर शशांक तेजी से चला गया। शर्मिला सोनेवाले कमरे का दरवाजा बन्द करके थोड़ी देर तक रोती रही।

शाम को निमन्त्रित लोग आये। बिजनेस के दावे को सब लोगों ने स्वीकार कर लिया। यह यदि कालिदास का जन्म-दिन होता और अगर उन्होंने 'शकुन्तला' का तृतीय अंश लिखने का कारण पेश किया होता तो

सब लोग उसे निश्चय ही एक बहुत बेकार का बहाना समझते। लेकिन बिजनेस! काफी आमोद-प्रमोद हुआ। नीलू बाबू ने थियेटर की नकल करके सबको खूब हँसाया। शर्मिला ने भी हँसी में योग दिया। शशांक के बिना शशांक के जन्म-दिन ने शशांक की बिजनेस को साष्टांग प्रणाम किया।

दुःख बहुत हुआ फिर भी शर्मिला के मन ने भी दूर से ही शशांक के इस भागते हुए कर्मरथ की ध्वजा को प्रणाम कर लिया। उसके पास वह काम है जो किसी की खातिर नहीं रुकता, किसी को नहीं मानता, स्त्री की विनती को भी नहीं, मित्रों के निमन्त्रण को भी नहीं, अपने खुद के आराम को भी नहीं। कार्य के प्रति इस श्रद्धा के द्वारा पुरुष अपने आप की श्रद्धा करता है, यह उसका अपनी शक्ति के आगे अपना निवेदन है।

शर्मिला गिरिस्ती की इस रोज-रोज की कर्मधारा के इस पार खड़ी होकर आश्चर्य से देखती रही है, दूसरे किनारे चलने वाले शशांक के कार्य को। उसकी सत्ता बड़ी व्यापक है, वह तो घर की सीमा छोड़ कर दूर देश को चली जाती है—सुदूर सागर के पार, जाने-अनजाने न मालूम कितने ही लोगों को वह अपने शासन के जाल में खींच लाती है। पुरुष अपने अदृष्ट के साथ नित्य जूझता रहता है और जब उसके कठोर मार्ग में अगर स्त्री का कोमल बाहुबन्धन विघ्न पैदा करने आ जाता है तो वह बहुत निर्मम भाव से उसे छिन्न कर देता है! इस निर्ममता को शर्मिला ने भक्ति के साथ स्वीकार कर लिया। फिर भी बीच-बीच में उससे सहा नहीं जाता। जिस जगह हृदय के आकर्षण को कोई अधिकार नहीं, वहाँ भी वह अपनी करुण उत्कंठा को ले जाता है, चोट खाता है, लेकिन इस चोट को प्राप्य समझ कर व्यथित मन से रास्ता छोड़ कर अलग भी हो जाता है। जहाँ उसकी अपनी गतिविधि रुकी हुई थी, वहाँ देवता को पुकारकर कहती, 'तुम अपनी नजर रखना।'

## २

जब इस परिवार की समृद्धि बैंक में जमा किये हुए रुपयों पर सवार होकर छः अंकों की संख्या की ओर दौड़ चली थी, उसी समय शर्मिला को किसी समझ में न आ सकने वाले रोग ने धर दबाया—उठने-बैठने की शक्ति भी नहीं रही। यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि इस बात को लेकर दिमाग खराब करने की क्या जरूरत पड़ गई।

राजाराम बाबू शर्मिला के पिता थे। बारीसाल जिले की ओर और गंगा के मुहाने की ओर उनकी कई जमींदारियाँ थीं। इसके सिवा शालीमार के घाट वाले जहाज बनाने के कारबार में भी उनके शेयर थे।

उनका जन्म पुराने जमाने और इस जमाने की सीमा पर हुआ था। कुश्ती में, शिकार में और लाठी चलाने में भी वे उस्ताद थे। पखावज बजाने में उनका नाम था। 'मर्चेन्ट आफ वेनिस,' 'जुलियस सीजर' और 'हैमलेट' से दो-चार पृष्ठ वे जबानी सुना सकते थे। मेकाले की अँग्रेजी उनकी आदर्श थी। वे बर्क की वाग्मिता पर मुग्ध थे। बँगला में उनकी सीमा 'मेघनाद' काव्य तक ही सीमित थी। अधेड़ अवस्था में भी शराब और अन्य निषिद्ध वस्तुओं को वे आधुनिक मन-बहलाव का आवश्यक अंग मानते थे। उनकी पोशाक बड़े यत्न से सँवारी हुई रहा करती थी। उनकी मुखश्री गम्भीर थी। देह लम्बी और मजबूत, तथा मिजाज मजलिसी था। माँगने वाले के आग्रह करने पर ना नहीं कर सकते थे। पूजा-

पाठ में उनकी कोई निष्ठा नहीं थी। फिर भी घर में उसका आयोजन बड़े समारोह के साथ होता था। इस समारोह के द्वारा ही वंशागत मर्यादा प्रकट होती थी। अगर वे चाहते तो अनायास ही राजा का खिताब पा सकते थे। उसके प्रति अपनी उदासीनता का कारण बताते समय कहा करते थे, 'पिता की दी हुई राजा की उपाधि तो भोग ही रहा हूँ, इसके ऊपर दूसरी उपाधि बैठाने से इसका सम्मान कम हो जायगा।' गवर्नमेंट हाउस की विशेष ड्योढ़ी में उनका सम्मान के साथ प्रवेश था। अँग्रेज अफसर लोग उनके घर चिरप्रचलित देवीपूजन के समय शेम्पेन का प्रसाद काफी मात्रा में प्राप्त किया करते थे।

शर्मिला के विवाह के बाद उनके पत्नीरहित घर में बड़ा लड़का हेमन्त और छोटी लड़की ऊर्मिमाला रह गई थी। लड़के को अध्यापक लोग दीप्तिमान कहा करते थे—अर्थात् अँग्रेजी में जिसे 'ब्रीलिएन्ट' कहा जाता है। उसका चेहरा ऐसा था कि फिर से लौट कर देखने की इच्छा होती थी। कोई भी ऐसा विषय नहीं था जिसमें उसकी बुद्धि विद्यामापक यन्त्र की सबसे ऊँची रेखा तक न पहुँची हो। इसके अलावा उसमें ऐसे लक्षण भी काफी प्रबल थे जिनसे यह मालूम होता था कि वह व्यायाम के क्षेत्र में भी अपने पिता के नाम की लाज बचायेगा। यह कहना व्यर्थ है कि उसके चारों ओर इच्छुक कन्या-मंडली की परिक्रमा बड़ी तेजी से चल रही थी। लेकिन उसका मन विवाह की ओर से उदासीन था। उसका उस समय तात्कालिक लक्ष्य तो यही था कि किसी योरपीय विश्वविद्यालय की उपाधि प्राप्त हो सके। इसी उद्देश्य को सामने रख कर उसने फ्रेंच और जर्मन सीखना शुरू किया था।

और कोई काम न होने पर अनावश्यक होने पर भी उसने जब कानून पढ़ना शुरू किया और उन्हीं दिनों उसके आँतों में अथवा शरीर के किसी अन्य अंग में न जाने कौन-सा ऐसा विकार उत्पन्न हुआ कि डाक्टरों को उसका कुछ पता ही नहीं मिल सका। वह अन्दर ही अन्दर छिपे ढंग से फैलने

वाला रोग उस तगड़े शरीर में इस प्रकार घर करके बैठ गया जैसे उसने किसी प्रबल दुर्ग का आश्रय ले लिया हो। उसे खोज निकालना जितना कठिन हुआ उतना ही उस पर आक्रमण करना भी।

उस समय के एक अँग्रेज डाक्टर पर राजाराम की दृढ़ आस्था थी। चीरफाड़ के काम में उनका हाथ बहुत सधा हुआ माना जाता था। इस डाक्टर ने रोगी के शरीर में रोग की खोज शुरू की। चीरफाड़ के अभ्यास के कारण उन्होंने अनुमान किया कि शरीर के किसी बहुत ही भीतरी हिस्से में रोग जड़ जमाकर बैठा है। जब उन्होंने अपने अस्त्र-कौशल से उस शरीर के उस स्थान को खोला तो उन्हें न तो वहाँ वह कल्पित शत्रु रूपी रोग ही मिला और न उसके अत्याचार का कोई चिन्ह ही। अब भूल सुधारने का उपाय ही नहीं रहा, लड़का चल बसा।

इस घटना से पिता के मन में जो भयानक दुःख हुआ वह किसी प्रकार भी शान्त नहीं हो पाता था। पुत्र की मृत्यु ने उन्हें इतना कष्ट नहीं दिया जितना कि इस स्मृति ने कि एक ऐसी सुन्दर और बलिष्ठ देह को चीरा-फाड़ा गया। इस स्मृति ने उनके मन को दिन-रात एक काले हिंस्र पक्षी की तरह अपने तीक्ष्ण नखों से जकड़ रखा, यहाँ तक कि मर्म-शोषण करके उसने उन्हें मृत्यु की ओर खींच लिया।

हेमन्त का एक पहले का सहपाठी और नया पास डाक्टर नीरद मुखर्जी उसकी शुश्रूषा में लगा था। वह बराबर जोर देकर कहता आ रहा था कि इलाज में गलती हो रही है। उसने खुद भी रोग का एक निदान सुझाया था और किसी सूखी जगह में आबहवा बदलने की राय भी दी थी, लेकिन राजाराम के मन में अपने पैतृक युग का संस्कार अटल था। वे जानते थे कि जब यमराज के साथ दुस्साध्य युद्ध छिड़ जाता है तब उसका एक मात्र प्रतिद्वन्द्वी सिर्फ कोई अँग्रेज डाक्टर ही हो सकता है। लेकिन इस मामले में नीरद पर उनके स्नेह और श्रद्धा की मात्रा जरूरत से ज्यादा बढ़ गई। और उनकी छोटी लड़की ऊर्मि के मन में

अचानक यह बात पैदा हो गई कि यह आदमी असाधारण प्रतिभा का धनी है। उसने पिता से कहा, 'देखा, बाबू जी, इतनी थोड़ी उम्र में भी इन्हें अपने आप पर कितना विश्वास है और साहस भी कितना है कि इतने बड़े विलायती डाक्टर के विरुद्ध बिना किसी हिचक के अपनी बात कह दी इन्होंने !'

पिता ने कहा, 'डाक्टरी विद्या केवल किताबें पढ़ने से नहीं आती। किसी-किसी में तो इसका दुर्लभ दैवी संस्कार पाया जाता है। नीरद में मुझे ऐसा ही नजर आता है।'

इनकी यह श्रद्धा एक छोटे से प्रमाण से शुरू हुई थी—शोक का आघात पाकर और परिताप की वेदना लेकर। इसके बाद किसी और प्रमाण की प्रतीक्षा न करके वह अपने आप बराबर बढ़ती चली गई।

राजाराम ने एक दिन अपनी लड़की से कहा, 'देख ऊर्मि, मुझे ऐसा लगता है कि मेरा हेमन्त मुझे बराबर बुला रहा है, जैसे कह रहा है कि मानव का रोग-कष्ट दूर करो ! मैंने निश्चय कर लिया है कि उसके नाम पर एक अस्पताल बनवाऊँगा।'

ऊर्मि अपने स्वाभाविक उत्साह में भर कर बोली, 'यह तो बहुत ही अच्छा होगा। मुझे आप यूरोप भेज दीजियेगा। मैं वहाँ से डाक्टरी सीख आऊँगी और अस्पताल का काम सँभाल लूँगी।'

यह बात राजाराम के मन को जँच गई। बोले, 'वह अस्पताल देवोत्तर सम्पत्ति होगा और तू उसकी होगी। हेमन्त ने बहुत दुःख झेला। तुझे वह बहुत चाहता था। तेरे इस पुण्य कार्य से वह परलोक में जरूर शान्ति पायेगा। तूने बीमारी के दिनों में रात-दिन उसकी सेवा की थी—अब वह सेवा तेरे हाथों और भी बड़ी हो उठेगी।' एक पुराने प्रतिष्ठित घर की लड़की डाक्टरी करेगी, यह भी उनके मन को विचलित न कर सका। उन्होंने अपने मन में अनुभव किया कि रोग के चंगुल से मनुष्य को बचाना कितनी बड़ी बात है ! उनका अपना लड़का नहीं बच सका, लेकिन

अगर दूसरों के लड़के बच जायें तो जैसे इस क्षति की पूर्त्ति हो जायगी और उनका दुःख भी हल्का हो जायगा। उन्होंने लड़की से कहा, 'यहाँ की युनिवर्सिटी में पहले साइन्स पढ़ लो फिर बाद में यूरोप में पढ़ लेना।'

अब राजाराम के मन में एक बात जो बराबर चक्कर काट रही थी, वह थी नीरद के सम्बन्ध में। लड़का क्या है जैसे सोने का टुकड़ा है! जितना ही देखो उतना ही सुन्दर लगता है। डाक्टरी वह एक बार पास कर चुका, लेकिन उसे तो नित्य ही परीक्षा के बयाबान को पास करके अपनी विद्या के सातों सागरों में गोते लगाना पड़ता है। उम्र अभी कच्ची है, लेकिन फिर भी आमोद-प्रमोद से उसका मन बिल्कुल चंचल नहीं हो पाता। हाल में जितने आविष्कार हुए हैं, वह उन्हीं की उलट-पलट कर आलोचना किया करता है—और इसमें अपनी कीर्ति के प्रसार को हानि पहुँचाने से भी नहीं घबराता। जिन लोगों ने अपने को किसी न किसी तरह दुनिया में जमा लिया है उनके प्रति उसकी बड़ी अवज्ञा रहती है। वह कहा करता है, 'मूर्ख व्यक्ति उन्नति प्राप्त करते हैं और योग्य व्यक्ति गौरव।' यह उसने किसी किताब से याद किया था।

अन्त में एक दिन राजाराम ने ऊर्मि से कहा, 'मैंने सोच कर देखा है कि अगर हमारे अस्पताल में तू नीरद की साथी होकर काम करे तभी यह कार्य पूर्ण हो सकेगा, और मैं भी निश्चिंत हो सकूँगा। उसके जैसा लड़का मुझे और कहाँ मिलेगा?'

राजाराम और जो कर सकते हों, लेकिन अपने लड़के हेमन्त की बात नहीं टाल सकते थे। वह कहा करता था कि लड़की की पसन्द की उपेक्षा करके माँ-बाप की पसन्द से विवाह करना बर्बरता है! राजाराम ने एक बार उसके साथ बहस के समय तर्क किया कि विवाह का मामला केवल व्यक्तिगत नहीं, उसके साथ संसार भी मिला है। इसीलिए विवाह सिर्फ इच्छा द्वारा ही नहीं बल्कि अभिज्ञता द्वारा होना चाहिये। वे तर्क चाहे जो कुछ

करें और उनकी रुचि भी चाहे जैसी हो हेमन्त पर उनका स्नेह इतना गम्भीर था कि उसकी इच्छा ही इस परिवार में विजयी हुई।

इस घर में नीरद का आना-जाना बराबर से होता आया था। हेमन्त ने उसका नाम उल्लू रख दिया था। पूछने पर वह कहता कि यह आदमी माइथोलोजिकल (पौराणिक) है! इसके पास उम्र नहीं है, बस सिर्फ विद्या है। इसीलिए मैं इसे मिनर्वा का वाहन कहता हूँ। नीरद इन लोगों के यहाँ प्रायः चाय पीने आया करता था। वह हेमन्त के साथ खूब बहस किया करता था। मन ही मन ऊर्मि को भी लक्ष्य करता था, लेकिन व्यवहार में कुछ भी प्रकट नहीं होने देता था। इसका कारण यह था कि इस तरह के मामलों के लिए आवश्यक व्यवहार ही उसके स्वभाव में नहीं था। वह बहस कर सकता था, लेकिन वार्तालाप करना नहीं जानता था। यौवन का उत्ताप उसमें रहा भी हो, लेकिन इसका प्रकाश उसमें नहीं था। इसी लिए जिन युवकों में यौवन पूरी तरह प्रकाशमान होता, उनके प्रति अवज्ञा दिखा कर वह सन्तुष्ट हो लेता था। इन्हीं सब कारणों से कोई भी उसे ऊर्मि के उम्मीदवारों में गिनने का साहस नहीं कर सकता था। लेकिन फिर भी ऊपर से दिखने वाली यह निरासक्ति ही वर्तमान कारण से युक्त होकर उसके प्रति ऊर्मि की श्रद्धा को सम्मुख की सीमा तक खींच ले गई।

राजाराम ने जब स्पष्ट रूप से कहा कि अगर लड़की के मन में कोई द्विधा न हो तो नीरद के साथ उसका विवाह होने से ही उन्हें प्रसन्नता होगी, तब लड़की ने भी सिर हिला कर अपना अनुकूल मत प्रकट किया था। हाँ, इसके साथ इतना उसने अवश्य स्पष्ट कर दिया कि अपने देश की और विलायत की पढ़ाई समाप्त होने के बाद ही विवाह होगा। पिता ने भी इसे स्वीकार किया हालाँकि एक दूसरे की सम्मति से सम्बन्ध पक्का हो जाने के बाद और किसी बात की चिन्ता नहीं रहती।

उधर नीरद की सहमति पाने में देर नहीं लगी हालाँकि उसकी

भावभंगी से यही प्रकट हुआ कि विवाह-सम्बन्ध के लिए तैयार होना एक वैज्ञानिक के लिए बड़ा भारी त्याग है—लगभग आत्मघात के बराबर। शायद इस दुर्योग का किसी प्रकार शमन करने के उद्देश्य से ही यह निश्चय किया गया कि सब बातों में नीरद ऊर्मि का पथ प्रदर्शन करेगा और धीरे-धीरे उसे अपनी भावी पत्नी के रूप में स्वयं ही तैयार कर लेगा। और यह कार्य भी बिलकुल वैज्ञानिक ढंग से होगा, कठोर सुव्यवस्थित नियमों के अनुसार, प्रयोगशाला की अभ्रान्त प्रक्रिया के समान ही।

नीरद ने ऊर्मि से कहा, 'प्रकृति के कारखाने से पशु-पक्षी तो बने-बनाये, तैयार माल की तरह निकलते हैं, लेकिन मनुष्य तो कच्चे माल की तरह आता है—उसे तैयार करने का भार स्वयं मनुष्य को उठाना पड़ता है।'

ऊर्मि ने विनम्रता से कहा, 'ठीक है, तो परीक्षा कीजिये, आपके मार्ग में कोई बाधा नहीं आयेगी।'

नीरद बोला, 'तुम में कई प्रकार की शक्तियाँ हैं। उन्हें तुम्हारे जीवन के एक मात्र लक्ष्य के चारों ओर बाँधना होगा। तभी तुम्हारा जीवन सार्थक होगा। किसी अभिप्राय के आकर्षण के बहाने विक्षिप्त तत्व को संक्षिप्त करना होगा—उसे कसना पड़ेगा, डायनमिक बनाना होगा। इतना होने पर ही उस एकत्व की प्राप्त अवस्था को 'मॉरल ऑर्गेनिज्म' कहा जा सकेगा।'

सुनकर ऊर्मि पुलकित हो उठी। उसने सोचा, उनके घर अनेक युवक चाय की टेबुल पर उपस्थित हुए लेकिन सोचने लायक बात उन्होंने कभी नहीं कही—दूसरा कोई कहे भी तो उन्हें उसमें कोई रुचि नहीं होती। असल में हर बात को अत्यन्त गम्भीर भाव से कहने का नीरद का अपना एक ढंग है। वह जो भी कहता, उसमें ऊर्मि को एक गम्भीर

तात्पर्य छिपा हुआ मालूम होता। वह उसे बहुत अधिक इन्टेलेक्चुअल जान पड़ता था।

राजाराम ने अपने बड़े दामाद को भी बुलाया। बीच-बीच में निमंत्रण का बहाना करके एक दूसरे से अच्छी तरह परिचय करा देने की कोशिश की।

शशांक ने शर्मिला से कहा, 'इस लड़के के पेट में दाढ़ी है, और वह भी ऐसी कि दूसरों के लिए बिलकुल असह्य। यह समझता है हम लोग उसके पास पढ़ने आये हैं। वह हमें अपना विद्यार्थी समझता है, और वह भी आगे बैठने वाले नहीं, सबसे पीछे और एक कोने में बैठने वाले।'

शर्मिला ने हँसकर कहा, 'यह तुम्हारी जेलसी (ईर्ष्या) है। क्यों, मुझे तो वह बहुत भला लगता है।'

'तो छोटी बहन के साथ स्थान परिवर्तन कर लो, क्या ख्याल है?'

'तब तुम शायद शांति की साँस ले सकोगे, मेरी बात तो खैर अलग है।'

शशांक के प्रति नीरद का भाईचारा कुछ बढ़ा हुआ नहीं मालूम होता। शशांक मन ही मन कहता, 'यह तो मजदूर आदमी है, इसे वैज्ञानिक कौन कहे। इसके हाथ तो हैं, लेकिन दिमाग कहाँ है!'

शशांक नीरद को लक्ष्य बना कर अपनी साली से मजाक करता 'अब पुराना नाम बदलने का मौका आ गया है!'

'क्या अँग्रेजी मत से?'

'नहीं, विशुद्ध संस्कृत मत से।'

'जरा सुनूँ तो सही, कौन-सा नया नाम ढूँढ़ा है?'

'विद्युत् लता! नीरद को यह पसन्द आयेगा। लैबोरेटरी में तो

इस चीज से उसका परिचय हुआ ही है, अब यह घर में बँधी हुई मिलेगी।'

शशांक के मन में जैसे कोई कुरेद उठता था—हाय, इतने बड़े घमंडी के हाथ ऐसी लड़की लगेगी! लेकिन यह कहना कठिन है कि किसके हाथ पड़ने से शशांक के मन को संतोष और सान्त्वना होती।

कुछ ही दिनों में राजाराम की मृत्यु हो गई और ऊर्मि के भावी स्वत्वाधिकारी—नीरदनाथ ने एकाग्र भाव से उसको नये सिरे से गढ़ने का भार सँभाला।

ऊर्मिमाला जैसी है, देखने में उससे भी कहीं अच्छी लगती है। उसके चंचल शरीर में उसके मन की उज्वलता झिलमिलाया करती है। उसे सब विषयों में उत्सुकतापूर्ण रुचि है। विज्ञान में जितना उसका मन लगता है, साहित्य में उससे ज्यादा ही लगता है, कम नहीं। फील्ड में फुटबाल का खेल देखने का उसे बहुत शौक है। सिनेमा देखना भी वह बुरा नहीं समझती। प्रेसिडेन्सी कालेज में विदेश से फिजिक्स का कोई विद्वान् व्याख्यान देने आया है, तो वह भी सुनने के लिए हाज़िर है। रेडियो सुनने के लिए हमेशा कान खड़े किये रहती है। बहुत सम्भव है कि सुन कर कह उठे—छिः! लेकिन फिर भी इतना निश्चित है कि उसे कौतूहल कम नहीं है। जब कभी बारात निकलती और बैंड-बाजों के पीछे दूल्हा निकलता तो वह देखने के लिए दौड़ कर बरामदे में आ खड़ी होती। चिड़ियाघर वह अकसर सैर के लिए जाया करती थी। वहाँ जानवरों को, खास तौर से बन्दरों को देखने और उनके पिंजड़ों के पास खड़े होने में उसे बड़ा आनन्द आता था। जब उसके पिता मछली पकड़ने जाते तो वह भी उनके साथ होती और बंसी लेकर उनके पास बैठ कर

मछली पकड़ती। टेनिस खूब खेलती थी और बैड्मिन्टन में भी उस्ताद थी। यह सब उसने अपने बड़े भैया से सीखा था।

पतली तो वह इतनी थी, जैसे संचारिणी लता ही हो, हवा लगी नहीं कि झूम उठी। उसका साज-सिंगार हमेशा सहज और सुन्दर, परिपाटी के अनुसार होता था। वह जानती थी कि साड़ी को किस प्रकार थोड़ा इधर-उधर घुमा-फिराकर या खींच-तानकर शरीर की शोभा बढ़ायी जा सकती है, और वह भी इस प्रकार कि किसी को इसका भेद न मालूम हो सके। गाना उसे अच्छा नहीं आता, लेकिन सितार वह अच्छा बजा लेती है। और फिर उसका संगीत देखने की चीज है या सुनने की—इसे कौन ठीक-ठीक बता सकता है? ऐसा लगता, जैसे उसकी चंचल उँगलियाँ सितार पर फिसल रही हैं। उसे बोलने के लिए कभी विषय की कमी नहीं पड़ती थी और हँसने के लिए उचित कारण का इन्तजार नहीं करना पड़ता था। साथ देने और अकेलेपन को दूर करने की उसकी क्षमता असीम थी, जहाँ रहती वहाँ के अन्तराल को वह अकेली ही भरा करती। सिर्फ नीरद के निकट ही कुछ बदली हुई सी लगती थी। तब ऐसा लगता, जैसे पालदार नाव के लिए हवा की गति मन्द हो गई हो और वह नम्र मंथर गति से बहने लगी हो।

सब लोगों का कहना था कि ऊर्मि का स्वभाव उसके भाई की तरह प्राण से भरा है। वह भी जानती है कि उसके भाई ने ही उसके मन को मुक्ति दिलायी है। हेमन्त कहा करता था, 'हमारे घर अलग-अलग साँचों के समान होते हैं। मिट्टी के मनुष्य ढालना ही उसका काम है। तभी तो यह हाल है कि इतने दिनों से विदेशी बाजीगर तेंतीस करोड़ पुतलियों को इतनी आसानी से नचा रहे हैं।' कभी वह कहता, 'जब कभी समय आयेगा तो मैं इस सामाजिक व्यक्ति-पूजा को समाप्त करने के लिए काला पहाड़ के समान आगे बढ़ूँगा!' उसे इसका मौका नहीं मिल सका, लेकिन ऊर्मि के मन को वह जाग्रत कर गया था।

कठिनाइयाँ आ खड़ी हुईं। नीरद की कार्य-प्रणाली बड़ी सधी हुई और विधिवत् थी। उसने ऊर्मि के लिए भी शिक्षा का क्रम बाँध दिया। उसने उपदेश के स्वर में कहा, 'देखो ऊर्मि, रास्ता पार करते-करते ही अगर मन को छलका डालोगी तो यह तो बताओ कि रास्ते के अन्त में तुम्हारे घड़े में क्या बच रहेगा ?'

और कभी वह कहता, 'तुम तितली की भाँति चंचल होकर घूमती-फिरती हो, संग्रह कुछ भी नहीं करतीं। तुम्हें तो मधुमक्खी की भाँति होना पड़ेगा। अपने प्रत्येक क्षण का हिसाब रखना होगा। जीवन कोई कोरी विलासिता तो है नहीं।'

हाल ही में नीरद ने इम्पीरियल लाइब्रेरी से शिक्षा-विज्ञान के सम्बन्ध में कुछ किताबें मँगाकर पढ़नी शुरू की हैं। उनमें इसी प्रकार की बातें लिखी हैं। उसकी भाषा भी जैसे पुस्तक की ही भाषा है, क्योंकि उसके पास अपनी कोई सहज भाषा नहीं है। ऊर्मि को अपने आपको दोषी मानने में कोई हिचक नहीं होती। उसका व्रत महान है, लेकिन फिर भी उसका मन बात-बात में खिसक पड़ता है। वह प्रायः अपने को धिक्कार दिया करती है। उसकी नजर के सामने ही एक उदाहरण मौजूद है, और वह है नीरद। कैसी आश्चर्यजनक दृढ़ता है, कैसा एकाग्र लक्ष्य है, सब प्रकार के आमोद-प्रमोद और आह्लादों के प्रति कैसा कठोर विरोध है! अगर वह ऊर्मि की टेबुल पर कहानी या ऐसे ही किसी हल्के साहित्य की पुस्तक देखता था तो उसे फौरन जब्त कर लिया करता। एक दिन जब वह ऊर्मि की खोज-खबर लेने आया तो उसे मालूम हुआ कि वह एक अँग्रेजी थियेटर में शालीवान का 'मिकाडो' नामक आपेरा देखने गई है। जब उसका भाई जीवित था तो ऐसा सुअवसर वह कभी हाथ से नहीं निकलने देता था। उस दिन नीरद ने उसे खूब आड़े हाथों लिया। उसने अँग्रेजी में अत्यन्त गम्भीरता से कहा, 'देखो ऊर्मि, तुमने व्रत लिया है कि तुम अपने बड़े भैया की मृत्यु को अपना सारा जीवन देकर सार्थक करोगी। लेकिन क्या बीच में ही उसे भूलने लगी हो ?'

यह सुन कर ऊर्मि को सचमुच बड़ा दुःख हुआ था। उसने सोचा, इस आदमी की अन्तरदृष्टि कितनी गहरी है! सचमुच ही भैया की शोक स्मृति की प्रबलता मुझमें कम होती जा रही है। और मैं इसे समझ ही नहीं पा रही थी! धिक्कार है! इतनी चंचलता है मेरे मन में! और फिर वह सावधान होने लगी। उसने अपने कपड़ों से शोभा और दिखावे का आभास ही कम कर दिया। उसकी साड़ी भी अब मोटी रहने लगी और वह भी बिना किसी रंग की, बिलकुल सफेद। आलमारी में चाकलेट भरा होता, लेकिन उसने अब उसे खाने का लोभ भी छोड़ दिया। अब अपने मन को उसने खूब कस कर सूखे कर्तव्य के खूँटे के साथ एक छोटी-सी सीमा में बाँध दिया। इसके लिए उसकी दीदी ने भला-बुरा सुनाया। शशांक ने नीरद के लिए न मालूम किन-किन विशेषणों का प्रयोग किया, जिन्हें शब्दकोश में ढूँढ़ना सम्भव नहीं। लेकिन वह अपने व्रत से नहीं डिगी।

एक स्थान पर नीरद और शशांक में समानता थी। शशांक का गाली देने का आवेग जब बहुत तीव्र हो उठता तो उसकी भाषा अँग्रेजी हो जाती थी। और इधर-नीरद को जब किसी ऊँचे विषय पर उपदेश करना होता तो वह भी अँग्रेजी का सहारा लेता था। नीरद को यह बहुत बुरा लगता है जब ऊर्मि निमन्त्रण वगैरह के सिलसिले में अपनी दीदी के यहाँ जाती है। और सिर्फ जाती ही नहीं, जाने के लिए आग्रह भी करती है। उसके साथ ऊर्मि का जो आत्मीय सम्बन्ध है, वह जैसे नीरद को अपने और ऊर्मि के सम्बन्ध को खंडित करता हुआ प्रतीत होता है।

नीरद ने एक दिन बड़ा गम्भीर चेहरा बना कर ऊर्मि से कहा, 'ऊर्मि देखो, मेरी बात का बुरा न मानना। क्या करूँ, तुम्हारा दायित्व मुझ पर है, इसीलिए मुझे कर्तव्य समझ कर यह अप्रिय बात कहनी पड़ रही है। मैं तुम्हें सचेत करना चाहता हूँ कि शशांक बाबू के घर वालों से हमेशा मिलते-जुलते रहना तुम्हारे लिए उचित नहीं है। इससे तुम्हारे विकास पर

स्वस्थ प्रभाव नहीं पड़ता। तुम तो आत्मीयता के मोह में अन्धी हो गई हो, लेकिन मैं दुर्गति की सारी सम्भावनाएँ साफ देख रहा हूँ।'

उसके इस निषेध का फल यह हुआ कि ऊर्मि का भवानीपुर की ओर आना-जाना कम हो गया। ऊर्मि का यह आत्मशासन जैसे एक बड़े ऋण-शोध के समान है। उसके जीवन का दायित्व स्वीकार करके नीरद ने हमेशा के लिए जो अपनी साधना के ऊपर एक भार बढ़ा लिया है, उससे बढ़ कर आत्म-अपव्यय उस तपस्वी वैज्ञानिक के लिए और क्या हो सकता है?

तरह-तरह के आकर्षणों से अपने मन को खींच लेने के दुःख की अब एक प्रकार से ऊर्मि आदी हो गई है, लेकिन फिर भी रह-रह कर उसके मन में एक प्रकार की वेदना उमड़ उठती है, जिसे चंचलता कह कर वह दबा भी नहीं पाती। नीरद हमेशा उसे शिक्षा दिया करता है, उसकी परिचालना किया करता है, लेकिन उसकी साधना क्यों नहीं करता? इस साधना के लिए उसका मन प्रतीक्षा किया करता है। और इसी साधना के अभाव में उसका हृदय पूर्ण विकास की ओर नहीं बढ़ पाता। जैसे उसका सारा कर्तव्य निर्जीव और नीरस हो जाता है। अचानक उसे किसी-किसी दिन मालूम होता है कि नीरद की आँखों में एक विशेष प्रकार का आवेश आया है, जैसे अब अधिक देर नहीं है, हृदय का गम्भीरतम रहस्य अभी निकल पड़ेगा। लेकिन भगवान जानते हैं उस गम्भीर वस्तु की वेदना चाहे कहीं हो भी, लेकिन उसकी भाषा तो नीरद की जानी हुई नहीं है। वह कह नहीं पाता है, शायद इसीलिए कहने की इच्छा को दोष देता है। अपने विचलित चित्त को वह गूँगा रख कर ही लौट आता है, इसी बात को वह अपनी शक्ति का परिचय मानता है और इस पर गर्व करता है। वह कहा करता है कि 'सैंटिमेंटैलिटी की ओर जाना हमारा काम नहीं है।' उस समय ऊर्मि को रोने की इच्छा होती है। लेकिन उसकी दशा यह है कि वह भक्तिपूर्वक ऐसा समझती है कि शायद इसी को वीरत्व कहते हैं।

इस तरह अपने दुर्बल मन को वह निष्ठुर भाव से चोट पहुँचाती है। वह कितनी भी कोशिश क्यों न करे बीच-बीच में यह बात उसे साफ झलक जाती है कि एक दिन शोक की प्रबलता के कारण एक कठिन कर्तव्य उसने अपनी इच्छा से ग्रहण किया था। लेकिन समय पाकर जब वही इच्छा दुर्बल हो आई तो उसने दूसरे की इच्छा को ही कस कर पकड़ लिया है!

नीरद उसे स्पष्ट कहा करता है, 'ऊर्मि, साधारण स्त्रियाँ जिस प्रकार पुरुषों से खुशामद पाने की आशा रखती हैं, तुम मुझसे ऐसा कुछ पाने की आशा न रखो, समझी न! मैं जो कुछ तुम्हें दूँगा वह इन बनावटी बातों से कहीं अधिक सत्य होगा, अत्यन्त मूल्यवान होगा।'

और ऊर्मि सिर झुका कर चुप हो जाती थी। वह मन ही मन सोचती, *'क्या इनसे कभी कोई बात छिपी न रहेगी?'*

वह किसी भी तरह अपने मन को बाँध नहीं पाती थी। छत पर अकेली घूमने जाती। अपराह्न का प्रकाश धूसर हो उठता। शहर के ऊँचे-नीचे मकानों को मुँडेरें पार करके सूरज अस्त हो जाता, और दूर गंगा के घाट पर नाव और जहाज के मस्तूलों के उस ओर। तरह-तरह के रंग-बिरंगे बादलों की रेखा दिन की अन्तिम सीमा पर अपना बेड़ा बाँध देती, और धीरे-धीरे वह बेड़ा भी गायब हो जाता। गिरजाघर के शिखर के ऊपर चाँद निकल आता। इस झुटपुटे प्रकाश में शहर जैसे सपने की भाँति हो जाता, जैसे कोई अलौकिक मायापुरी हो। मन में यह प्रश्न उठता कि क्या सचमुच ही जीवन इतना अविचलित और कठिन है? और क्या जीवन इतना ही कृपण है कि न छुट्टी ही देगा और न रस ही? और अचानक उसका मन बिगड़ उठता, शरारत करने की इच्छा हो आती, जी में आता कि चिल्ला कर कह दे—'मैं यह सब कुछ नहीं मानती!'

# ऊर्मिमाला

नीरद ने रिसर्च का जो काम लिया था वह समाप्त हो गया। उसने अपने लेख को यूरोप की किसी विज्ञान-परिषद को भेज दिया। उस परिषद ने उसकी प्रशंसा की और इसके साथ ही साथ नीरद के लिए एक स्कालरशिप का भी इन्तजाम हो गया। उसने निश्चय किया कि उसी स्थान के विश्वविद्यालय से डिग्री लेने के लिए वह समुद्र-मार्ग ग्रहण करेगा। विदा लेते समय किसी प्रकार की करुणाजनक बातचीत नहीं हुई। चलते समय वह बार-बार यही कहता रहा, 'मैं तो जा रहा हूँ, लेकिन मुझे डर है कि तुम अपने कर्तव्य-पालन में शिथिलता का परिचय दोगी।'

ऊर्मि ने कहा, 'आप किसी तरह की चिन्ता न करें।'

वह बोला, 'कैसे तुम्हें आगे काम करना है, कैसे अपनी पढ़ाई-लिखाई जारी रखनी है, इसके सम्बन्ध में तुम्हें एक नोट लिख कर दिये जा रहा हूँ।'

'मैं ठीक इसी के अनुसार चलूँगी।'

'लेकिन तुम्हारी उस आलमारी की किताबों को मैं अपने घर में बन्द कर देना चाहता हूँ।'

'तो लीजिये, ले जाइये,' यह कह कर ऊर्मि ने चाबी उसके हाथ पर रख दी। सितार की ओर एक बार नीरद की नजर पड़ी, लेकिन फिर वह दुविधा में पड़ कर रुक गया।

अन्त में नितान्त कर्तव्य के अनुरोध से ही नीरद को कहना पड़ा, 'मुझे सिर्फ एक डर है। शशांक बाबू के घर की ओर तुम्हारा ज्यादा आना-जाना होता रहा तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि तुम्हारी निष्ठा दुर्बल हो जायगी। यह न समझ लेना कि मैं शशांक बाबू की निन्दा कर रहा हूँ। वे बहुत अच्छे आदमी हैं। अपने काम-काज के लिए इस प्रकार का उत्साह और उनके जैसी बुद्धि मैंने बहुत कम बंगालियों में पाई है। लेकिन उनका एक मात्र दोष यह है कि वे किसी भी आदर्श को नहीं मानते। सच कहता हूँ, उनके लिए मुझे कई बार भय होता है।'

इस प्रकार शशांक के अनेक दोषों की बात चल पड़ी और बात-बात में नीरद इस शोचनीय सम्भावना को भी बताना नहीं भूल सका कि उनमें बहुत से ऐसे दोष भी हैं जो अभी छिपे पड़े हैं, लेकिन उम्र के बढ़ने के साथ-साथ एक-एक करके वे प्रबल आकार में प्रकट होंगे। लेकिन यह सब बताते हुए भी नीरद मुक्त कंठ से यह भी स्वीकार करना चाहता था कि वैसे वह बहुत भले आदमी हैं। और साथ ही यह भी कहना चाहता था कि उनके साथ उठने-बैठने से और उनके घर के वातावरण से अपने आप को बचाना ऊर्मि के लिए खासतौर से बहुत जरूरी है। अगर ऊर्मि का मन उनकी भूमि पर उतर आया तो अधःपतन ही समझो।

ऊर्मि बोली, 'आप इतने अधिक उद्विग्न क्यों हो रहे हैं?'

'क्यों हो रहा हूँ, यह सुनोगी? बुरा तो नहीं मानोगी?'

'आप ही से सच बात सुनने की शक्ति पाई है। जानती हूँ, यह मेरे लिए सहज नहीं है, फिर भी सहन तो कर ही सकती हूँ।'

'तो सुनो। तुम्हारा स्वभाव और शशांक बाबू का स्वभाव मिलता-जुलता है। इस बात को मैंने गौर से देखा है। उनका मन एकदम हलका है। वही तुमको भी अच्छा लगता है। बताओ, ठीक कह रहा हूँ या नहीं?'

ऊर्मि सोचने लगी, कहीं यह आदमी सर्वज्ञ तो नहीं है! इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह अपने बहनोई को बहुत पसन्द करती है। इसका खास कारण यह है कि शशांक खिलखिला कर हँस सकता है, शरारती है, मजाक करता है, और उसे यह अच्छी तरह मालूम है कि ऊर्मि को कौन-सा फूल पसन्द है, किस रंग की साड़ी उसे अच्छी लगती है।

वह बोली, 'हाँ, वे मुझे अच्छे लगते हैं, यह ठीक है।'

'और शर्मिला दीदी का प्रेम स्निग्ध और गम्भीर है। उनकी सेवा तो मानों एक पुण्य कार्य है। अपने कर्तव्य-कर्म से वह कभी छुट्टी नहीं लेतीं। इसी बात के प्रभाव में शशांक बाबू ने एकाग्र चित्त से काम करना सीखा है। लेकिन जिस दिन तुम भवानीपुर जाती हो उसी दिन उनका वह आवरण हट जाता है। तुम्हारे साथ ऊधम शुरू हो जाती है। वह तुम्हारे बालों से काँटे निकाल कर जूड़ा खोल देते हैं और तुम्हारे हाथ से किताब छीन कर ऊँची आलमारी के सिरे पर रख देते हैं। तब टेनिस खेलने का शौक भी उनमें प्रबल हो उठता है, चाहे कितने ही काम पड़े क्यों न रह जायें।'

ऊर्मि को मन ही मन यह मानना पड़ा कि शशांक इस प्रकार की शरारत अक्सर करते हैं और इसी कारण उसे अच्छे भी लगते हैं। उनके पास जाने पर उसका अपना लड़कपन चंचल हो उठता है। वह भी उन्हें कुछ कम परेशान नहीं करती। और दीदी उन दोनों की शरारत

देख कर अपनी शान्त, स्निग्ध हँसी हँसती रहती है। कभी-कभी वह मीठी फटकार भी बताया करती हैं, हालाँकि यह महज एक दिखावा होता है।

फिर नीरद ने अपनी बात समाप्त करते हुए कहा, 'तो जहाँ तुम्हारा अपना स्वभाव आश्रय न पाये, तुम्हें वहीं रहना चाहिये। मैं अगर पास रहता तब तो कोई चिन्ता नहीं थी, क्योंकि मेरा स्वभाव तुमसे बिलकुल उलटा है। तुम्हारा मन रखने के लिए उसे एकदम मिट्टी में मिला देना मेरे लिए कभी सम्भव नहीं हो सकता।'

ऊर्मि ने सिर झुका कर कहा, 'आपकी बात मैं हमेशा याद रखूँगी।'

वह बोला, 'मैं तुम्हारे लिए कुछ किताबें छोड़ जाना चाहता हूँ। मैंने उनमें जिन अध्यायों पर निशान लगा दिये हैं, उन्हें तुम जरा खास तौर से पढ़ना। यह पढ़ाई आगे काम आयेगी।'

ऊर्मि को इस सहायता की आवश्यकता थी, क्योंकि इधर उसके मन में कभी-कभी आशंका होने लगी थी। वह सोचा करती थी, शायद पहले के उत्साह की झोंक में मैं गलती कर बैठी हूँ। शायद डाक्टरी मेरे अनुकूल नहीं पड़ेगी।

नीरद की ये निशान लगी हुई पुस्तकें उसके लिए कठोर बन्धन का काम करेंगी और उसे धारा के विरुद्ध खींच ले चलेंगी। और सचमुच नीरद के चले जाने पर ऊर्मि अपने ऊपर और भी कठिन बन्धन बाँधने लगी। वह कालेज जाती और बाकी समय में वह अपने को घर में ही बन्द करके रखती थी। दिन भर के बाद लौटने पर उसका थका हुआ मन जितना ही छुट्टी चाहता, वह उतनी ही निष्ठुरता से उसे पढ़ाई-लिखाई की जंजीरों में बाँध कर रोके रहती थी। पढ़ाई आगे नहीं बढ़ पाती—एक ही पृष्ठ पर मन बार-बार व्यर्थ ही चक्कर काटता रहता, लेकिन फिर भी वह हार नहीं मानना चाहती थी। नीरद पास में

मौजूद नहीं है इसलिए उसकी इच्छा-शक्ति दूर से और भी अधिक प्रभाव डालने लगी।

जब कभी पहले की बातें उसके मन में उठा करती थीं तो अपने को धिक्कार देती थी। युवकों में अनेक उसके भक्त थे। उसने किसी की उपेक्षा की थी और किसी-किसी के प्रति उसका मन आकर्षित भी हुआ। प्रेम परिणत नहीं हुआ, लेकिन प्रेम करने की इच्छा उस समय मृदु-मन्द वासन्ती पवन की भाँति उसके मन को आन्दोलित करती रही। इसीलिए वह गुनगुना कर गीत गाया करती थी। अच्छी लगने वाली कविताओं को वह प्रायः नकल कर लिया करती थी। जब मन बहुत अधिक उतावला हो जाता था तब वह सितार लेकर बैठ जाती थी।

आजकल कभी-कभी शाम को पढ़ते समय जब उसकी आँखें किताब से उलझी रहती हैं, तब अचानक वह चौंक उठती है और उसे ऐसा लगता है जैसे उसके मन में पिछले दिनों के किसी ऐसे परिचित का चेहरा बार-बार उभर आता है, जिसे उसने कभी विशेष प्रश्रय नहीं दिया। यहाँ तक कि उस व्यक्ति का बराबर आग्रह करते रहना उसे उन दिनों अप्रसन्न कर दिया करता था। आज शायद उसका वही अविश्राम आग्रह ऊर्मि की भीतरी अतृप्ति की वेदना को उसी प्रकार छू रहा है जिस प्रकार तितली के क्षणिक हल्के पंख फूल को वसन्त का स्पर्श दे जाते हैं।

इन विचारों को वह जितने ही वेग से अपने मन से दूर करना चाहती है उतनी ही तेजी से उस वेग का प्रतिघात फिर से उसके मन में उन्हीं विचारों को उत्पन्न कर देता है। डेस्क पर नीरद का एक फोटो रखा है। वह उसकी ओर एक टक देखती रही। उस चेहरे में बुद्धि का प्रकाश तो है, लेकिन आग्रह या आकर्षण का कोई चिन्ह नहीं। वह तो जैसे उसे पुकारता ही नहीं, फिर उसके प्राण जवाब दें तो किसे दें! मन ही मन वह बस एक ही बात रटा करती है, 'इनमें कैसी प्रतिभा है, कितनी तपस्या है! कैसा निर्मल चरित्र है! कैसा मेरा सौभाग्य है!'

यहाँ यह स्पष्ट कर देना भी आवश्यक है कि एक बात में नीरद की जीत हुई है। नीरद के साथ ऊर्मि के विवाह की बात जब तय हुई तो शशांक और उसके जैसे कुछ और शक्की मिजाज आदमियों ने इस बात पर व्यंग्य किया था। उन्होंने कहा था, 'राजाराम बाबू सीधे आदमी हैं। उन्होंने समझ लिया है कि नीरद आईडियलिस्ट है। लेकिन उसका आइडियलिज्म चुपचाप ऊर्मि के रुपयों की थैली के भीतर बैठ कर जो अंडा से रहा है, क्या उसे इन लम्बे-चौड़े सुन्दर वाक्यों से ढँका जा सकता है? उसने निश्चय ही अपने आपको उत्सर्ग किया है। लेकिन जिस देवता के निकट उसने अपना उत्सर्ग किया है उसका मन्दिर इम्पीरियल बैंक में है। हम श्वसुर साहब को पहले से ही बता देना चाहते हैं कि रुपये की वहाँ जरूरत है और वह रुपया पानी में नहीं जायगा, बल्कि उन्हीं की लड़की की सेवा में लगेगा। लेकिन ये तो महान् पुरुष हैं। कहते हैं महान् उद्देश्य के लिए ही विवाह करेंगे। और फिर नित्य ही उस उद्देश्य का रूपान्तर अपने ससुर की चेक-बुक के रूप में करते रहेंगे।'

नीरद जानता था कि ऐसी बातों का उठना रोका नहीं जा सकता। वह ऊर्मि से बोला, 'मैं एक शर्त पर ही विवाह कर सकता हूँ। वह यह कि मैं तुम्हारे रुपयों में से एक पैसा भी नहीं लूँगा, मेरी अपनी कमाई ही मेरा एक मात्र अवलम्बन होगी।'

ससुर ने जब उसे विलायत भेजने का प्रस्ताव रखा तो वह किसी प्रकार भी राजी नहीं हुआ। इसके लिए उसे बहुत दिनों तक प्रतीक्षा भी करनी पड़ी। उसने राजाराम बाबू को बताया, 'अस्पताल की स्थापना के लिए आप जितना भी रुपया देना चाहते हैं वह सब अपनी लड़की के नाम जमा कर दीजिये। मैं जब अस्पताल का भार सँभालूँगा तो कोई पैसा वगैरह नहीं लूँगा। मैं डाक्टर हूँ, मेरी जीविका के लिए आप चिन्ता न करें।'

इस निस्पृहता को देख कर उसके प्रति राजाराम बाबू की भक्ति और भी बढ़ गई और ऊर्मि ने भी बड़े गर्व का अनुभव किया। इस गर्व का

उचित कारण जब स्पष्ट हुआ तो शर्मिला का मन नीरद की ओर से बिल्कुल ही फिर गया। वह बोली, 'ऊँह, देखें यह दिमाग कितने दिनों तक रहता है!'

इसके बाद से नीरद जब भी अपनी आदत के अनुसार कोई गम्भीर बात कहने लगता तो शर्मिला बातचीत के बीच से अचानक उठ पड़ती और गर्दन टेढ़ी करके बाहर निकल जाती थी। और इस तरह पैर पटक कर जाती कि काफी दूर तक उसके पैरों की आवाज सुनाई देती। वह ऊर्मि का लिहाज करके कुछ कहती तो नहीं, लेकिन उसके न बोलने की व्यंजना काफी स्पष्ट हुआ करती थी।

विलायत जाने के बाद शुरू-शुरू में तो नीरद हर डाक की चिट्ठी में चार-पाँच पृष्ठों में विस्तृत उपदेश दिया करता था। लेकिन कुछ दिनों बाद उसने एक तार देकर सब लोगों को अचरज में डाल दिया। तार में पढ़ाई के लिए एक लम्बी संख्या में रुपयों की जरूरत पेश की गई थी। जो गर्व इतने दिनों तक ऊर्मि का प्रधान सम्बल था उसमें काफी चोट लगी, लेकिन मन में थोड़ी सान्त्वना भी मिली। ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगे और नीरद की अनुपस्थिति लम्बी होती गई, ऊर्मि का अपना पहले का स्वभाव कर्तव्य के घेरे के भीतर सूराख खोजने लगा। वह अपने को तरह-तरह के बहानों से भुलाया भी करती और फिर पश्चात्ताप भी करती। ऐसी आत्मग्लानि के समय नीरद को रुपये-पैसे से सहायता करने में उसका संतप्त मन थोड़ी सान्त्वना भी पा जाता था।

ऊर्मि ने टेलीग्राम अपने मैनेजर बाबू के हाथ में देकर संकोच के साथ कहा, 'काकू, रुपये—'

मैनेजर बाबू ने कहा, 'कुछ समझ में नहीं आ रहा है। हम तो यही जानते थे कि रुपया उधर अस्पृश्य ही समझा जाता है।' मैनेजर बाबू नीरद को पसन्द नहीं करते थे।

ऊर्मि बोली, 'लेकिन विदेश में—' वह आधी ही बात कह सकी।

मैनेजर ने उत्तर दिया, 'यह तो मैं जानता हूँ कि इस देश का स्वभाव विदेश की मिट्टी में बदल जाता है—लेकिन हम लोग उसके साथ हाथ मिला कर किस प्रकार चल सकेंगे ?'

वह बोली, 'रुपया न मिलने से शायद तकलीफ में फँस जायँगे—'

'बहुत अच्छा बेटी, चिन्ता न करो। मैं रुपया भेज रहा हूँ। लेकिन इतना कहे देता हूँ कि यह शुरुआत है, अन्त नहीं।'

यह अन्त नहीं था। इसका प्रमाण भी थोड़े ही दिनों में मिल गया जब नीरद ने और भी बड़ी संख्या में रुपये की माँग की। इस बार उसने स्वास्थ्य का बहाना बनाया था। मैनेजर बाबू ने गम्भीर चेहरा बना कर कहा, 'शशांक बाबू से राय लेनी होगी।'

ऊर्मि व्यस्त होकर बोली, 'आप और चाहें जो करें, लेकिन दीदी के घर तक यह खबर न जाने पाये।'

'लेकिन अकेले यह जिम्मेदारी लेना मुझे ठीक नहीं लगता।'

'एक दिन तो रुपया उनके हाथ में जायगा ही।'

'हाँ, ठीक है। लेकिन उसके बाद यह भी तो देखना होगा कि वह पानी में तो नहीं जा रहा है।'

'लेकिन उनके स्वास्थ्य की बात तो सोचनी ही होगी।'

'हाँ, लेकिन अस्वास्थ्य भी कई प्रकार का होता है—यह समझ में नहीं आ रहा है कि उनका अस्वास्थ्य किस कोटि का है। यहाँ लौट आने पर शायद हवा बदलने से वे स्वस्थ हो जायें। लौटती पैसेज का इन्तजाम करके उन्हें बुला लिया जाय।'

उसे लौटाने के प्रस्ताव से ऊर्मि बहुत अधिक विचलित हो उठी और उसे चिन्ता होने लगी कि इस कारण कहीं नीरद को अपना उद्देश्य पूरा कर सकने में दिक्कत न हो। वह यह नहीं चाहती।

मैनेजर ने कहा, 'इस बार तो रुपये भेज देता हूँ, लेकिन लगता है कि डाक्टर साहब का स्वास्थ्य वहाँ और भी खराब होता जायगा।'

उस समय ऊर्मि का कुछ दूर का सम्बन्धी राधागोविन्द वहीं बैठा था। उसने मैनेजर का संकेत समझ लिया, उसे शक होने लगा। उसने सोचा कि यह सब दीदी को बताना ही होगा।

इधर ऊर्मि बार-बार अपने मन को कचोट कर पूछती, 'इस सब से तुम्हें दुख क्यों नहीं होता?'

इसी बीच शर्मिला रोगग्रस्त हो गई। सब चिन्ता में पड़ गये। भाई की बीमारी की स्मृति ताजो थी। सब भयभीत होने लगे। कई डाक्टर अनेक दिशाओं से रोग की आवास गुहा खोज निकालने के लिए जुट पड़े। शर्मिला ने थकी हुई हँसी हँस कर कहा, 'सी० आई० डी० वालों के हाथ से असली अपराधी तो निकल ही जायगा और चोट खाकर मरना होगा एक निरपराध को।'

शशांक ने चिन्तित होकर कहा, 'देह की तलाशी तो यथाविधि चलती रहेगी, लेकिन चोट किसी प्रकार नहीं लगने दी जायगी।'

इसी समय शशांक को दो बड़े-बड़े काम मिले। एक तो गंगा किनारे जूट मिल में और दूसरा टालीगंज की ओर मीरपुर के जमींदार के नये उद्यानगृह में। जूट मिल की कुली-बस्ती का काम पूरा करने की मियाद तीन मास की थी। शशांक को बिलकुल फुरसत नहीं थी। शर्मिला की बीमारी से अकसर ही उसे रुक जाना पड़ता था, हालाँकि काम की फिक्र उसे हमेशा लगी रहती थी।

दोनों का विवाह हुए इतने दिन हो गये, लेकिन शर्मिला को ऐसी

कोई बीमारी नहीं हुई, जो शशांक के लिए चिन्ता का कारण बनती। इसीलिए इस बार की बीमारी से उसका मन बच्चों की तरह छटपटाने लगा। काम-काज छोड़ कर, घूम-फिर कर वह निरुपाय-सा शर्मिला के बिस्तर के पास आ बैठता। सिर पर हाथ फेरता और पूछता, 'कैसा लग रहा है?' और शर्मिला फौरन कहती, 'तुम बेकार चिन्ता न करो, मैं ठीक ही हूँ।' यह बात विश्वास करने के योग्य नहीं होती, लेकिन फिर भी शशांक विश्वास करके तुरन्त ही छुट्टी पा जाता था, क्योंकि विश्वास करने की उसकी इच्छा प्रबल थी।

शशांक ने कहा, 'ढेंकानल के राजा साहब का एक बहुत बड़ा काम हाथ में आया है। उसके प्लान के बारे में दीवान से बात करनी होगी। जितनी जल्दी हो सकेगा, लौट आऊँगा—डाक्टर के आने से पहले ही।'

शर्मिला ने अनुरोध के स्वर में कहा, 'तुम्हें मेरे सिर की कसम, कहीं जल्दीबाजी में काम खराब न कर देना। मैं जानती हूँ, तुम्हें उनकी स्टेट तक जाने की जरूरत है। तुम जरूर जाना, नहीं जाओगे तो मैं अच्छी नहीं हूँगी। मेरी देखभाल और लोग कर लेंगे।'

शशांक के मन में विराट ऐश्वर्य संचित करने का संकल्प हमेशा जगा रहता था। लेकिन उसका आकर्षण ऐश्वर्य के प्रति नहीं, उसके बड़प्पन के प्रति था। कुछ बड़ी चीज गढ़ना ही पुरुष का पुरुषार्थ है। रुपये-पैसे को केवल तभी तक तुच्छ समझ कर उनकी अवज्ञा की जा सकती है, जब तक उससे सिर्फ दिन कटते हैं। जब उसकी चोटी ऊँची कर दी जाती है तो साधारण लोग उसके प्रति श्रद्धा प्रकट करने लगते हैं। यह इसलिए नहीं कि उससे उनका उपकार होता है, बल्कि इसलिए कि उसके बड़प्पन को देखने से मन में एक उत्साह और स्फूर्ति का संचार होता है। शर्मिला के सिरहाने बैठे-बैठे जब शशांक के मन में द्वंद्व चला करता तो उस समय वह यह सोचे बिना नहीं रह पाता था कि उसके कार्य की सिद्धि में किस बाधा के आने की आशंका है। और शर्मिला जानती

है कि शशांक की यह भावना किसी कृपणता या मन के छोटेपन से प्रेरित नहीं है, बल्कि यह उस पुरुषार्थ की भावना है जो अपनी साधारण स्थिति के निचले धरातल से ऊपर आसमान की ओर जय-स्तम्भ खड़ा करना चाहता है। और उसके इस गौरव से वह भी अपने को गौरवान्वित समझती थी। इसीलिए अच्छी लगने के बावजूद यह बात उसे पसन्द नहीं थी कि शशांक उसकी सेवा-सुश्रुषा में उलझ कर अपने काम में ढिलाई करे। इसीलिए वह उसे बार-बार काम की ओर लौटा दिया करती थी।

इधर अपने कर्तव्य के बारे में शर्मिला की उत्कंठा का कोई अन्त नहीं था। आज वह खाट पर पड़ी है और उधर नौकर-चाकर न मालूम क्या कर रहे हैं। उसे इस बात में जरा भी शक नहीं कि वे लोग रसोई में जरूरत से ज्यादा घी का इस्तेमाल कर रहे हैं, स्नानघर में यथा समय गरम पानी देना भूल जाते होंगे, बिस्तर की चादर नहीं बदलते होंगे, मोरियों में मेहतरों की झाड़ू नियमित रूप से नहीं लगती होगी। और धोबी के कपड़े मिला कर न सँभालने से कैसी गड़बड़ हो जाती होगी यह तो जानी हुई बात है। वह रह नहीं पाती थी। चुपके से बिस्तर से उठ आती और पूछताछ करने जाती। इससे उसका दर्द बढ़ आता था, बुखार चढ़ जाता था, और डाक्टर समझ ही नहीं पाता था कि आखिर बात क्या है।

अन्त में उसने ऊर्मिमाला को बुला भेजा। उसके आने पर उससे कहा, 'कुछ दिनों के लिए अपना कालेज रहने दे बहन, मेरी गिरिस्ती की रक्षा कर दे, वरना मैं निश्चिन्त होकर मर भी नहीं पाऊँगी।'

अब तक कि यह कहानी जिन लोगों ने पढ़ी है, वे लोग यहाँ पर जरा व्यंग्य की हँसी हँस कर कहेंगे, 'समझ लिया। अब आगे समझने के लिए ज्यादा बुद्धि की आवश्यकता नहीं है। जो कुछ घटने वाला होता है वह घट ही जाता है और वही काफी होता है। यह समझने का कोई कारण नहीं कि भाग्य का खेल ताश के पत्तों को छिपा कर चलेगा—और वह भी शर्मिला की आँखों धूल झोंक कर।'

ऊर्मि यह सोच कर बहुत उत्साहित हुई कि अब मैं दीदी की सेवा करने जा रही हूँ। इस कर्तव्य के लिए बाकी का सारा काम बन्द रखना होगा। इसके सिवा और कोई उपाय भी तो नहीं। और फिर यह तो सेवा-सुश्रुषा का काम है जो डाक्टरी के भावी काम से सम्बद्ध ही है। इस प्रकार उसने अपने मन को तर्क से समझाया। बड़े ठाट से उसने एक चमड़े की जिल्दवाली नोटबुक खरीदी और उसमें रोग के दैनिक ज्वार-भाटे का हिसाब रखने के लिए आड़ी-तिरछी लकीरें खींची। कहीं आगे चल कर डाक्टर उसे कम अनुभवी समझ कर उसकी अवज्ञा न करे, इसलिए उसने निश्चय किया कि जहाँ कहीं भी दीदी के रोग के सम्बन्ध में लिखा मिलेगा उन सब को वह पढ़ डालेगी। एम० एस-सी० की परीक्षा में उसका एक विषय शरीरतत्व भी था। इसलिए रोग के पारिभाषिक शब्दों को समझने में उसे कोई दिक्कत नहीं होगी। यानी दीदी की सेवा से उसके कर्त्तव्य का सूत टूट नहीं जायगा बल्कि और भी ज्यादा एकाग्र मन से वह कठिनतर प्रयोग द्वारा अपने उसी कर्तव्य का अनुसरण करेगी। यह सब तय करके उसने अपने पढ़ने की किताबें वगैरह एक बैग में भर कर भवानीपुर के मकान में प्रवेश किया। लेकिन दीदी के रोग के बारे में डाक्टरी-विद्या सम्बन्धी किताबों को छानने का सुयोग उसे नहीं मिल सका, क्योंकि विशेषज्ञ लोग भी रोग की संज्ञा का निर्णय नहीं कर सके थे।

ऊर्मि ने सोचा यहाँ उसे शासनकर्त्ता का काम मिला है। इसलिए उसने गम्भीर चेहरा बना कर दीदी से कहा, 'डाक्टर की बात का ठीक-ठीक पालन हो सके, उसे देखने का भार मुझ पर है। इसलिए देखो मेरी बात मान कर चलना होगा, यह मैं कहे देती हूँ।'

दीदी उसकी इस जवाबदेही के आडम्बर को देख कर हँस पड़ी। उसने कहा, 'यही तो मैं भी सोच रही हूँ कि इस प्रकार अचानक गंभीर हो उठना तुमने किससे सीखा। नई दिशा है, शायद इसीलिए इतना

उत्साह है। मेरी बात मान कर तू चलेगी इसीलिए तो तुझे बुलाया है। तेरा अस्पताल तो अभी बना नहीं, लेकिन मेरी घर-गिरिस्ती बन चुकी है। तब तक तू ही यह भार सँभाल, ताकि तेरी दीदी को जरा छुट्टी मिले।'

अपनी रोग-शय्या के पास से ऊर्मि को दीदी ने जबरदस्ती हटा दिया। आज दीदी के गृह-राज्य में प्रतिनिधि के पद पर प्रतिष्ठित थी। इस राज्य में अराजकता फैली हुई है। जल्दी ही इसे दूर करना चाहिये। इस गिरिस्ती के सर्वोच्च शिखर पर जो आदमी विराजमान है उसकी सेवा में जरा सी भी त्रुटि न हो, इस महान उद्देश्य के लिए हमेशा प्रयत्नशील रहना ही इस घर के छोटे-बड़े सब व्यक्तियों का एक मात्र कर्तव्य है। शर्मिला के मन से यह बात किसी प्रकार भी दूर होना नहीं चाहती कि वह बेचारे इस समय बहुत निरुपाय हो गये हैं और अपनी देहयात्रा के निर्वाह में अत्यन्त शोचनीय भाव से अकर्मण्य हैं। जब वह यह देखती है कि चुरुट की आग से उन भले आदमी का आस्तीन जरा जल गया है तो उसे हँसी भी आती है और साथ ही मन भी स्नेह से भर आता है। सुबह-सुबह हाथ-मुँह धोकर सोने के कमरे में लगे हुए कल की टोटी को खुला ही छोड़ कर इंजीनियर साहब हड़बड़ी में बाहर निकल जाते हैं। लौट कर जब देखते हैं तो फर्श पर पानी जमा मिलता है और कार्पेट चौपट हुआ मिलता है। शुरू में ही शर्मिला ने यहाँ नल लगाने पर आपत्ति की थी। वह जानती थी कि इस आदमी के हाथ से बिस्तर के पास के उस कोने में प्रति दिन जल और थल मिल कर प्रलय का दृश्य उपस्थित कर देंगे।

लेकिन इतने बड़े इंजीनियर को रोके तो कौन? उसका उत्साह इसी में था कि वैज्ञानिक सुविधा की दुहाई देकर हर तरह की असुविधाओं को बढ़ाते रहना। अचानक एक बार न मालूम क्या उसके दिमाग में आया कि उसने बिलकुल ओरिजिनल प्लान के अनुसार एक स्टोव

तैयार किया। अजीब तरह का स्टोव था वह। उसके इस तरफ एक 'दरवाजा, उस तरफ एक दरवाजा; इधर एक चोंगा, उधर एक चोंगा; इधर आँच की फजूलखर्ची बचा कर आँच तेज करने का और उधर एक ढालू रास्ते से अपने आप राख निकल जाने का विधान—और फिर ऊपर से सेंकने का, तलने का, उबालने का, पानी गरम करने का, और इसी प्रकार के अनेक छेद-छाद और कल-पेंच वगैरह। इस विचित्र यंत्र को उत्साह में ही मान लेना पड़ा, व्यवहार के लिए नहीं, बल्कि घर की शान्ति और सद्भाव के लिए। यह है वयस्क शिशुओं का खेल। बाधा देने से अनर्थ होता है, और फिर भी दो दिन में भूल जाते हैं। हमेशा की बँधी व्यवस्था में मन बँधता नहीं। कुछ विचित्र सृष्टि करना चाहता है। और इस स्थिति में स्त्रियों की जिम्मेदारी यह है कि मुँह से उनकी बात में हामी भर दें और अपने ढंग से काम करती रहें। इस प्रकार के स्वामी-पालन की जिम्मेदारी शर्मिला इतने दिनों से उठाती चली आ रही थी।

इतने दिन कट गये। अपने को हटा कर शशांक की दुनिया की कल्पना शर्मिला कर ही नहीं सकती थी। उसे अब डर लग रहा है कि मृत्यु का दूत आकर जगत और जगद्धात्री के बीच विच्छेद न पैदा कर दे। यहाँ तक कि उसे आशंका है कि मृत्यु के बाद भी शशांक का दैहिक कष्ट शर्मिला की अदेही आत्मा को शांतिहीन बनाये रखेगा। भाग्य-वशात् इस मौके पर सहायता के लिए ऊर्मि मौजूद थी। वह उसकी तरह शांत नहीं है, लेकिन फिर भी कामकाज चला लेती है। इस काम को लड़कियाँ ही सँभाल सकती हैं। उस स्निग्ध हाथ का स्पर्श पाये बिना पुरुषों के प्रति दिन के जीवन का कोई प्रयोजन ही नहीं रह जाता। सब कुछ न मालूम कैसा श्रीहीन हो जाता है। इसीलिए ऊर्मि जब अपने सुन्दर हाथों में छुरी लेकर सेव के छिलके छीलती और काट-काट कर उन्हें सजाती, या नारंगी के कोओं को सँभाल कर सफेद पत्थर की तश्तरी में एक-एक ओर रखती, अथवा अनार के दानों को प्लेट में सजाती तो

शर्मिला अपनी बहन के भीतर अपने आप को ही पाती थी। बिस्तर पर पड़े-पड़े वह हमेशा काम की याद दिलाया करती थी—

'उनके सिगरेट केस में सिगरेट भर देना, ऊर्मि।'

'देख नहीं रही है रुमाल मैला हो गया है। इसे बदलने का ख्याल नहीं है तुझे?'

'वह देख जूता सीमेंट-बालू में सन कर कड़ा हो गया है। उन्हें तो इतना भी होश नहीं है कि बैरा से कह दें कि जरा साफ कर दे।'

'जरा उनके तकिये का गिलाफ बदल देना बहन।'

'अरे, उन कागजों को फेंक दे रद्दी की टोकरी में।'

'जरा एक बार उनके आफिस वाला कमरा तो देख आ ऊर्मि। मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि कैश-बक्स की चाभी वे डेस्क पर फेंक कर चले गये होंगे।'

'सुन, जरा याद रखना कि फूलगोभी के पौधे उठा कर रोपने का समय हो आया है।'

'माली से कहना कि गुलाब की डालें छाँट दें।'

'वह देख, उनके कोट की पीठ में चूना लगा है। अरे, जरा रुक न। इतनी भी जल्दी क्या है, जरा पोंछ देना बहन। जरा ब्रश कर दे।'

ऊर्मि ने किताबें पढ़ी थीं, कभी कोई कामकाज नहीं किया था। लेकिन फिर भी उसे इन सब कामों में बड़ा मजा आता था। जिस कड़े नियम में वह रहती थी उसके बाहर आकर जो भी कामकाज उसे मिलता था वह सब उसे नया-सा ही लगता था। इस गिरिस्ती की कर्म-धारा के भीतर-भीतर जो उद्वेग है, जो साधना है, वह तो उसके मन में है नहीं। लेकिन उसकी चिन्ता का सूत्र उसकी दीदी के भीतर है। इसीलिए ये काम उसके लिए खेल जैसे ही हैं।

वह जहाँ इतने दिनों से उससे यह दुनिया बिलकुल अलग है। यहाँ उसके सामने कोई लक्ष्य उँगली नहीं उठाये है, फिर भी उसके दिन काम काज से भरे हुए हैं। अजीब तरह का काम है यह। यहाँ गलती भी होती है, त्रुटि भी होती है, लेकिन उसके लिए कोई कठिन जवाबदेही नही है। दीदी अगर कुछ डाँटने की कोशिश भी करती हैं तो शशांक उसे मजाक में हँस कर उड़ा देता है, जैसे ऊर्मि की गलती में भी एक प्रकार का रस है। वास्तव में आजकल इन लोगों की गिरिस्ती में से उत्तरदायित्व की गम्भीरता ही चली गई है। भूल-चूक से कुछ बनता बिगड़ता नहीं। कुछ ऐसी ही ढील आ गई है। शशांक के लिए यही बड़े आराम और कौतुक का विषय है। ऐसा जान पड़ता है जैसे पिकनिक चल रही है। और ऊर्मि जो किसी बात से चिन्तित नहीं होती, दुखित नहीं होती, लज्जित नहीं होती, इन सबसे प्रफुल्लित हो जाती है। और इससे शशांक के अपने मन के गुरु भार की पीड़ा हल्की हो जाती है। काम खत्म होते ही, और कभी-कभी तो न खत्म होने पर भी, उसका मन घर लौट आने के लिए उत्सुक हो उठता है।

यह तो मानना ही होगा कि ऊर्मि कामकाज में चतुर नहीं है। फिर भी ध्यान से देखने पर एक बात स्पष्ट हो जाती है। वह यह कि काम के द्वारा न हो लेकिन अपने आप को देकर ही उसने इस घर के बहुत दिनों से बने हुए अभाव को पूरा कर दिया है। स्पष्ट रूप से बता पाना अभी कठिन है कि वह अभाव क्या था। इसीलिए जब शशांक घर लौटता तो वहाँ के वातावरण में एक विचित्र हलकापन महसूस करके प्रसन्न हो जाता। यह हल्कापन सिर्फ घर की सेवा में ही नहीं दिखाई देता, बल्कि उसका एक रसमय स्वरूप भी है। असल में ऊर्मि की अपनी उन्मुक्तता ने, एक तरह की छुट्टी के आनन्द ने, यहाँ के समूचे सूनेपन को पूरा कर दिया है और दिन रात को चंचल बना दिया है। उसकी यह चंचलता काम से थकेमादे शशांक के रक्त को आन्दोलित कर देती थी। दूसरी ओर शशांक ऊर्मि से प्रसन्न है, यह जान कर ऊर्मि भी कम खुश नहीं है।

इतने दिनों तक ऊर्मि ने कभी यह सुख नहीं पाया था। वह केवल अपने अस्तित्व मात्र से ही किसी को प्रसन्न कर सकती है—यह तथ्य उसके निकट बहुत दिनों से अजाना ही रह गया था, और शायद इसी से उसकी वास्तविक गौरव की हानि हुई थी।

शशांक का काम आराम से चल रहा है या नहीं, ठीक समय पर ठीक चीज का आयोजन हुआ या नहीं, अब ये बातें इस घर के प्रभु के मन में उतना महत्व नहीं रखतीं। यों ही अकारण वह प्रसन्न हैं। शर्मिला से शशांक कहता, 'तुम छोटी-मोटी बातों को लेकर इस तरह परेशान क्यों हुआ करती हो? रोजाना के अभ्यास में कुछ अन्तर आ जाने से कोई असुविधा तो होती नहीं, उल्टे अच्छा ही लगता है।'

इन दिनों शशांक का मन ज्वार-भाटे के बीच पड़ी हुई नदी के समान हो गया है। कामकाज का वेग ठिठक गया है। अब इस तरह की बातें नहीं सुनाई देतीं कि किस जरा-सी बात के न होने से काम बिगड़ जायगा या जरा-सी देर होने से ही कोई बात बिगड़ जायगी। अगर ऐसा कुछ प्रकट भी होता है तो ऊर्मि उसकी गम्भीरता को तोड़ देती है, हँस पड़ती है और शशांक के चेहरे का गम्भीर भाव देख कर कहती है, 'आज शायद तुम्हारा हौआ आया था—वही हरी पगड़ी वाला, न मालूम किस देश का दलाल! शायद डरा-धमका गया है।'

वह चकित होकर पूछता, 'तो तुम उसे कैसे जान गई?'

'मैं उसे खूब जानती हूँ। उस दिन जब तुम बाहर चले गये थे तब वह अकेला ही बरामदे में बैठा था। उसका घर बीकानेर मे है और उसकी स्त्री मच्छरदानी में आग लगने से मर गई है। अब वह नई शादी की फिराक में है।'

'तो अब तो जब मैं निकल जाया करूँगा तब वह रोज ही आया करेगा। जब तक उसे कोई स्त्री नहीं मिल जाती तब तक उसके स्वप्न का रंग तो जमेगा !'

'मुझे बता जाना कि उससे कौन सा काम पटाना है। उसके रंग-ढंग से तो लगता है कि मैं उसे पटा सकती हूँ।'

आजकल शशांक के खाते में संख्याओं का बढ़ना जरा धीमा हो जाता है तब भी उसमें किसी तरह की परेशानी के भाव नहीं दिखाई देते। शाम को रेडियो के पास कान लगाये रहने का उत्साह अब तक शशांक में कभी देखा नहीं गया था। लेकिन अब जब ऊर्मि उसे रेडियो की ओर खींच ले जाती है तो यह काम न तो उसे तुच्छ ही मालूम होता है और न इसमें अब उसका समय ही खराब होता है। हवाई जहाज का उड़ना देखने के लिए एक दिन सुबह-सुबह उसे दमदम तक जाना पड़ा। अब न्यू मार्केट में शापिंग के लिए जाने का भी श्रीगणेश हो गया। इसके पहले शर्मिला ही साग-सब्जी और फल या मांस-मछली वगैरह खरीदने वहाँ जाया करती थी। वह इसे अपने ही विभाग का काम मानती थी। इस काम में शशांक कभी उसकी सहायता भी करेगा यह बात उसके मन में भी कभी नहीं आई थी। और न ऐसा कभी उसने चाहा ही था। लेकिन ऊर्मि तो खरीदने नहीं जाती। वहाँ तो वह सिर्फ चीजों को उलटती-पुलटती इधर-उधर देखती फिरती है। चीजों का मोल भाव करती है और शशांक कुछ खरीद लेना चाहता है तो वह उसका मनीबेग छीन कर अपने बेग में रख लेती है।

शशांक के काम के लिए ऊर्मि के दिल में जरा भी दर्द नहीं था। कभी-कभी उसने ज्यादा बाधा देने के कारण डाँट भी खाई थी, लेकिन उसका फल ऐसा दुखदायी हुआ कि उसकी शोचनीयता दूर करने के लिए शशांक को दूना समय लगाना पड़ा। इधर तो ऊर्मि की आँखों में आँसू के बादल और उधर अपने काम की ताकीद। आखिर संकट

में पड़ कर उसने घर के बाहर के कमरे में अपना कामकाज खत्म कर देने की कोशिश की। लेकिन तीसरा पहर बीतते-बीतते उसका वहाँ रह जाना कठिन हो जाता था।

जिस दिन किसी विशेष कारण से देर हो जाती थी तो उस दिन ऊर्मि का अभिमान दुर्भेद्य मौन के रूप में दुर्जय हो जाता था। यह रुके हुए आँसुओं की कुहेलिका में घिरा हुआ मान शशांक को आनन्दित ही करता था। वह कहता, 'ऊर्मि, तुम बात नहीं करोगी, इस सत्याग्रह की रक्षा करना उचित है, लेकिन धर्म की दुहाई है, खेलने न चलने का तो तुमने प्रण नहीं किया है।'

और शशांक हाथ में टेनिस का बैट लेकर वहाँ से चला जाता। कुछ ही देर में वह वहाँ पहुँच जाती। खेलते समय जब वह जीतने के समीप ही होता तो जानबूझ कर हार मान लेता था। जो समय नष्ट होता था इसमें उसके लिए उसे दूसरे दिन पछताना पड़ता था।

एक दिन छुट्टी थी। शाम के समय शशांक अपने दाहिने हाथ में लाल-नीली पेन्सिल लेकर बाँये हाथ की उँगलियाँ अपने बालों पर फेर रहा था और अपनी डेस्क पर बैठा किसी काम में मशगूल था। उसी समय ऊर्मि आकर बोली, 'मैंने तुम्हारे उस दलाल के साथ तय किया है कि वह आज मुझे पारसनाथ का मन्दिर दिखाने ले जायगा। तुम भी चलो न साथ में, जीजा जी।'

शशांक ने गिड़गिड़ाकर कहा, 'न भई, आज नहीं। इस समय मेरे लिए उठना कठिन है।'

लेकिन कामकाज की गंभीरता से ऊर्मि को डरा पाना मुश्किल है। वह बोली, 'एक अबला नारी को उस हरी पगड़ी वाले के साथ अरक्षित अवस्था में छोड़ देने में तुम्हें जरा भरी संकोच नहीं होता, यही तुम्हारी शिवलरी है!'

आखिरकार उसकी खींचतान से शशांक को अपना काम छोड़ कर मोटर ड्राइव करने के लिए तैयार होना ही पड़ा। जब इस प्रकार के उत्पात का आभास शर्मिला को मिलता तो वह बहुत नाराज होती, क्योंकि उसका मत था कि पुरुष के साधना-क्षेत्र में स्त्रियों का अनधिकार प्रवेश उचित नहीं होता। शर्मिला ऊर्मि को एक छोटी बच्ची की तरह ही जानती आई थी। आज भी वह ऐसा ही समझती है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि दफ्तर को लड़कपन की जगह बना दिया। इसलिए ऐसे अवसर पर वह ऊर्मि को बुला कर खूब डाँट बताया करती है। इस डाँट-फटकार का कोई उचित नतीजा भी निकल सकता है लेकिन पत्नी का क्रोधपूर्ण स्वर सुन कर शशांक खुद दौड़ा आता है और दरवाजे के बाहर खड़ा-खड़ा आँख से इशारा करके ऊर्मि को आश्वासन देने लगता है। और फिर ताश को गड्डी दिखाता, जिसका मतलब यह होता कि आओ आफिस में तुम्हें पोकर का खेल सिखाऊँगा। यह ताश खेलने का समय नहीं होता लेकिन इसकी कोई परवाह नहीं। और बड़ी बहन की कड़ी फटकार से ऊर्मि के मन में जो पीड़ा होती थी वह ऊर्मि की अपेक्षा उसे ही ज्यादा लगती थी। वह खुद भी ऊर्मि को डाँट कर या अनुनय करके अपने काम की जगह से हटा देता था, लेकिन इस बात से उसे दुख होता था कि इसी बात को लेकर शर्मिला उसे कुछ कहे-सुने।

शर्मिला उसे पास बुला कर कहती, 'उसकी हर बात पर तुम ध्यान देने लगोगे तो कैसे चलेगा? इस तरह तुम्हारे काम का नुकसान जो होता है।'

शशांक कहता, 'अरे, बेचारी बच्ची है। यहाँ उसका कोई नहीं है, न संगी न साथी। जरा खेलने-खाने का मौका न मिले तो आखिर जियेगी कैसे।'

यह तो हुआ कई तरह का लड़कपन। उधर जब शशांक किसी

मकान को बनाने का प्लान बनाता तो ऊर्मि उसके बगल में कुर्सी खींच कर आ बैठती और कहती मुझे भी समझा दो न। और आसानी से ही वह समझ भी लेती थी। गणित के नियम उसे जरा भी मुश्किल नहीं मालूम होते थे। इससे शशांक बहुत प्रसन्न होता। वह उसे सवाल देता और वह आसानी से उन्हें हल कर लाती थी। जब शशांक जूट कम्पनी के स्टीम लांच पर काम की देखरेख के लिए जाता तो वह भी हठ कर बैठती, 'मैं भी जाऊँगी।'

और ऐसी जगह वह सिर्फ जाती ही नहीं बल्कि मापजोख का हिसाब लेकर उसके बारे में बहस भी किया करती थी। इससे शशांक पुलकित हो उठता था। अब लकीर खींचने वाले हिसाब के काम में उसे एक साथी मिल गया था। वह ऊर्मि को पास बिठा कर उसे समझा-समझाकर काम करता था हालाँकि इस तरह काम तेजी से नहीं हो पाता था। लेकिन फिर भी समय की लम्बाई सार्थक जान पड़ती थी।

और यहीं शर्मिला को धक्का लगता था। वह ऊर्मि के लड़कपन को भी समझती थी, घर-गिरिस्ती ठीक से न चला पाने की कमी को भी समझती थी और स्नेहपूर्वक सहन कर लिया करती थी। लेकिन व्यवसाय के क्षेत्र में पति के साथ स्त्री की बुद्धि के दूरत्व को उसने हमेशा से माना था। वहाँ ऊर्मि का बराबर आना-जाना उसे बिलकुल पसन्द नहीं था। यह एकदम दुस्साहस है। अपनी-अपनी सीमाएँ मान कर चलने को ही गीता में स्वधर्म कहा गया है। जब वह बहुत अधीर हो गई तो एक दिन उसने ऊर्मि से पूछा, 'अच्छा ऊर्मि, यह तो बता यह सब माँपना-आंकना, हिसाब वगैरह लगाना क्या तुझे बहुत अच्छा लगता है?'

'हाँ, मुझे अच्छा लगता है, दीदी।'

शर्मिला ने अविश्वास के स्वर में कहा, 'हूँ, अच्छा लगता है कि उन्हें खुश करने के लिए दिखाया करती है कि अच्छा लगता है।'

ठीक यही सही। खिलाने-पिलाने में शशांक को खुश करना तो शर्मिला को अच्छा लगता है, लेकिन इस तरह की खुशी उसकी अपनी खुशी से मेल नहीं खाती।

वह शशांक को बार-बार अपने पास बुला कर कहती, 'इसके साथ इस तरह बेकार अपना समय क्यों नष्ट किया करते हो? इससे तुम्हारे काम का कितना हर्ज होता है। वह तो जरा सी बच्ची ठहरी। उसकी समझ में यह सब क्या आयेगा।'

शशांक कहता, 'वह मुझसे कम नहीं समझती।' और वह अपने मन में सोचता कि अपनी छोटी बहन की यह तारीफ सुन कर वह जरूर खुश हुई होंगी।

अपने काम के बहाने जब शशांक ने अपनी स्त्री के प्रति मनोयोग छोटा किया तब शर्मिला ने उसे अगत्या नहीं मान लिया था। इससे उसे गर्व ही हुआ था। इसीलिए अपने सेवापरायण दावे को उसने बहुत कुछ कम कर लिया था। वह कहती कि पुरुष तो राजा जाति के होते हैं, उन्हें बराबर दुःसाध्य काम करने पड़ते हैं। अगर वे ऐसा न करें तो वे स्त्रियों से भी गये बीते हो जाते हैं। क्योंकि स्त्रियाँ तो अपने स्वाभाविक माधुर्य और प्रेम के जन्मजात ऐश्वर्य से ही संसार में अपनी स्थिति को सार्थक किये रहती हैं। पुराने जमाने में राजा लोग बिना किसी प्रयोजन के ही राज्य जीतने के लिए निकल पड़ते थे। तब उनका उद्देश्य राज्य लाभ करना उतना नहीं होता था जितना कि नये सिरे से अपने पौरुष का गौरव प्रमाणित करना हुआ करता था। और इस गौरव की प्राप्ति में स्त्रियों को बाधा नहीं देनी चाहिये।'

शर्मिला ने कभी स्वयं बाधा नहीं दी, बल्कि स्वेच्छा से शशांक की लक्ष्य-साधना के पथ को छोड़ दिया। एक समय उसने अपने सेवा-जाल में शशांक को फाँस रखा था। पर बाद में मन में दुख होने पर भी उसने

उस जाल को ढीला कर दिया। सेवा अब भी वह पर्याप्त करती है, लेकिन अदृश्य नेपथ्य में रह कर।

लेकिन हाय, आज शशांक का यह कैसा पराभव दिखाई दे रहा है! रोग-शय्या पर पड़ी-पड़ी वह सब कुछ देख तो नहीं सकती लेकिन फिर भी काफी आभास पा जाती है। शशांक का चेहरा देख कर वह समझ लेती है कि वह अब हमेशा एक अजीब तरह के आवेश में रहता है। यह बित्ता भर की लड़की कितने थोड़े से समय में ही इस कर्म-कठिन व्यक्ति को उसकी इतनी बड़ी साधना के आसन से डोलायमान किये दे रही है! पति की यह अश्रद्धेयता शर्मिला को अपने रोग के दर्द से भी अधिक पीड़ा पहुँचा रही है।

शशांक के रहन-सहन, कपड़े-लत्ते, खाने-पीने वगैरह में कई तरह की त्रुटियाँ हो रही हैं, इसमें सन्देह नहीं है। जो खाना उसे बहुत पसन्द है, वह भोजन के समय प्रायः गायब ही नजर आता है। यहाँ इसकी भी कैफियत मिलती है, लेकिन किसी कैफियत को यहाँ आज तक माना ही नहीं गया। इस संसार के उलझे हुए सम्बन्धों में इतना बड़ा युगान्तर आज आ उपस्थित हुआ है कि काफी बड़ी त्रुटियाँ भी हँसने काबिल हो गई हैं। तो दोष किसे दें? ऊर्मि जब दीदी के साथ रसोईघर के मोढे पर बैठ कर पाक प्रणाली परिचालन में नियुक्त होती और साथ ही साथ मिसरानी जी के पिछले जीवन की बातों की आलोचना चलती रहती कि ऐसे समय में शशांक अचानक आ पहुँचता और—कहता, 'इस समय यह सब किस्सा कहानी रहने दो!'

'क्यों, क्या काम करना है?'

'इस समय मेरी छुट्टी है। चलो विक्टोरिया मेमोरियल की इमारत देख आयें। उसे देख कर मुझे क्यों इतनी हँसी आती है, यह तुम्हें आगे समझा दूंगा।'

इतने बड़े प्रलोभन के कारण अपने हाथ के काम को छोड़ कर जाने

के लिए ऊर्मि का मन फौरन चंचल हो उठता। शर्मिला यह जानती थी कि रसोईघर से उसकी बहन के अचानक गायब हो जाने के बाद भी भोजन की उत्कृष्टता में कोई फर्क नहीं पड़ेगा, लेकिन फिर भी इतना तो है ही कि भोजन के समय अगर किसी स्निग्ध हृदय का थोड़ा-सा भी सहयोग मिल जाय तो यह बात शशांक के मन को खुश कर देगी। लेकिन आज अब आराम की बात उठाने से क्या लाभ—और वह भी जब कि यह रोज साफ होता जा रहा है कि आराम एक मामूली-सी बात हो गई है और उसका पति बिना आराम के भी खुश है।

इस प्रकार शर्मिला के मन में अशांति का प्रवेश हुआ। रोग-शय्या पर पड़ी वह बार-बार करवट बदलती हुई अपने आप से कहती, 'मरने से पहले आखिर यह मैंने समझ ही लिया! मैं और सब कुछ कर सकी हूँ, लेकिन प्रसन्न नहीं कर सकी। सोचा था कि ऊर्मिमाला के भीतर अपने आप को ही देख सकूँगी, लेकिन वह तो बिलकुल दूसरी ही लड़की है।' कभी खिड़की से बाहर देख कर सोचती—मेरी जगह वह नहीं ले सकी और न मैं उसकी जगह ले सकूँगी। मैं चली जाऊँगी तो यहाँ सिर्फ नुकसान ही होगा लेकिन वह चली जायगी तो सब कुछ शून्य ही हो जायगा।

यह सब सोचते-सोचते उसे अचानक याद आ गया कि जाड़े के दिन आ रहे हैं, गरम कपड़ों को धूप में डालना चाहिये। ऊर्मि उस समय शशांक के साथ पिंग-पांग खेल रही थी, उसे बुला भेजा।

उसके आने पर कहा, 'ऊर्मि यह चाबी लेकर जा। गरम कपड़ों को छत पर धूप में फैला दे।'

ऊर्मि ने अभी आलमारी में चाबी लगाई ही थी कि शशांक ने

आकर कहा, 'अरे, यह सब बाद में होगा, बहुत समय पड़ा है पहले खेल खत्म कर आओ।'

'लेकिन दीदी—'

'अच्छा, दीदी से छुट्टी माँग लेता हूँ।'

और दीदी ने छुट्टी दे दी, और उसके साथ ही एक लम्बी निश्वास भी ली।

उसने नौकरानी को बुला कर कहा, 'जरा मेरे सिर पर ठंडे पानी की पट्टी रख दे।'

बहुत दिनों बाद एकाएक छूट पाकर ऊर्मि अपने आप को भूल-सी गई थी, फिर भी किसी-किसी दिन उसे अपने जीवन की कठोर जिम्मेदारी याद आ जाती थी। वह तो स्वाधीन नहीं है, वह तो अपने व्रत के साथ बँधी है। उसी व्रत के कारण जिस बन्धन ने उसे एक व्यक्ति विशेष के साथ बाँधा है। उसका अनुशासन भी तो सिर पर मौजूद है। और उस आदमी ने उसके दैनिक जीवन की तफसील भी तय कर दी है। ऊर्मि किसी प्रकार भी यह अस्वीकार नहीं कर पाती थी कि उसके जीवन पर हमेशा के लिए उस व्यक्ति का अधिकार हो गया है।

जब नीरद पास था तब यह स्वीकार करना आसान था, तब मन में एक जोश रहता था। और इस समय उसकी इच्छा तो इसके बिलकुल विपरीत हो गई है लेकिन कर्त्तव्य-बुद्धि अब भी पीछे पड़ी हुई है। कर्त्तव्य-बुद्धि के इस अत्याचार से मन और भी बिगड़ उठता है। अपने ही किये हुए अपराध को क्षमा करना कठिन हो गया है, इसीलिए अपराध प्रोत्सा-

हन पाने लगा है। मन की इस पीड़ा पर अफीम का लेप लगाने के लिए ही वह शशांक के साथ खेलकूद और हँसी-मजाक करके उसे भुलाये रखने की कोशिश करती है। वह अपने मन में कहती कि इन थोड़े दिनों के लिए जब तक कि मुझे जरा छुट्टी मिली है, तब तक कुछ देर के लिए इन बातों को पड़ा रहने दिया जाय। लेकिन फिर अचानक किसी दिन जोर से सिर हिलाते हुए अपने ट्रंक से अपने पढ़ने की किताब कापी निकालती और उन पर अपना सिर खपाने बैठ जाती थी। और अब शशांक की बारी आती। वह किताबों को खींच कर फिर से ट्रंक में रख देता और ट्रंक को दबा कर उस पर बैठ जाता। ऊर्मि कहती, 'जीजा जी, यह बड़ा अन्याय है। मेरा समय इस तरह बरबाद न करो।'

शशांक कहता, 'तुम्हारा समय बरबाद करने में मेरा भी तो समय बरबाद हुआ जा रहा है। इसलिए जमा-खर्च बराबर हुआ।'

इसके बाद थोड़ी देर तक खींचतान करके अंत में ऊर्मि हार मान लेती। और इससे उसे कुछ बुरा लगा है ऐसा भी कुछ उसके चेहरे से प्रकट नहीं होता। इस प्रकार की बाधा पाकर भी उसकी कर्तव्य-बुद्धि की मार कुछ दिनों जारी रहती और फिर धीरे-धीरे उसका जोर कम होता जाता था। वह ऊपर से कहती, 'मुझे कमजोर न समझना जीजा जी, मेरे मन में प्रतिज्ञा दृढ़ता से जमी है।'

'यानी ?'

'यानी यह कि मैं यहाँ से डिग्री लेकर यूरोप डाक्टरी सीखने जाऊँगी।'

'और फिर ?'

'और फिर अस्पताल स्थापित करके उसकी जिम्मेदारी सँभालूँगी।'

'इसके अलावा और किसकी जिम्मेदारी सँभालोगी ? वह जो नीरद मुकर्जी नाम का एक अनसफरेबुल—'

शशांक का मुँह बन्द करके ऊर्मि कहती, 'चुप रहो। अगर यह सब कहोगे तो झगड़ा हो जायगा।'

और अपने मन को खूब दृढ़ करके ऊर्मि मन में कहा करती थी, मुझे सच्चा बनना होगा, सच्चा बनना होगा। नीरद के साथ उसके पिता जी जो सम्बन्ध स्वयं स्थिर कर गये हैं, उसके प्रति सच्चा न होना वह अपने सतीत्व-धर्म के विरुद्ध समझती थी।

लेकिन इसमें कठिनाई यह थी कि दूसरी ओर से उसे कोई बल नहीं मिल पाता था। वह उस लता की तरह थी जो धरती को कस कर पकड़े हुए है, लेकिन आसमान के प्रकाश से वंचित है, उसकी पत्तियाँ पीली पड़ गई हैं। कभी-कभी वह असहिष्णु हो उठती थी और सोचती थी कि यह आदमी जरा ढँग की एक चिट्ठी भी क्यों नहीं लिख पाता।

बचपन में ऊर्मि बहुत दिनों कानवेंट में पढ़ी थी। और कुछ हो या न हो अँग्रेजी वह खूब अच्छी जानती थी। और यह बात नीरद को मालूम थी। इसीलिए अँग्रेजी में लिख कर उसे प्रभावित करने का नीरद ने निश्चय कर रखा था। इस प्रकार अपनी मातृभाषा में लिखने की आदत से जान बची। लेकिन बेचारे को यह नहीं मालूम था कि उसे अँग्रेजी नहीं आती। वह बड़े भारी-भरकम शब्दों को बटोरता, किताबों के ढंग के बड़े-बड़े वाक्य बनाता और इस प्रकार के वाक्यों से उसका पत्र उसी प्रकार लद जाता जिस प्रकार बोरों से बैलगाड़ी लदती है। यह देख कर ऊर्मि को हँसी आती लेकिन फिर नीरद पर हँसने में उसे लाज भी लगती। वह अपने को ही डाँटकर कहती, 'एक बंगाली आदमी की अँग्रेजी में कोई गलती हो तो उसको लेकर नुकताचीनी करना अच्छा नहीं है, यह तो स्नॉबरी हुई।'

यहाँ रहते हुए जब नीरद उसके सामने बैठ कर उसे उपदेश देने की कोशिश करता था, तब उसका चेहरा गर्व से बड़ा गम्भीर हो जाता था। कान से सुनते समय उसके अन्दाज का असर हुआ करता था लेकिन

इस तरह की लम्बी चिट्ठी में अन्दाज की गुँजाइश नहीं होती। उसकी बड़ी-बड़ी बातें हलकी ही जातीं।

नीरद का जो रूप समीप रहने के कारण बरदाश्त हो जाता था वही दूर होने के कारण सबसे अधिक दुखदायी होता था। यह आदमी हँसना तो जानता ही नहीं। उसकी चिट्ठियों से उसकी यह कमी और भी अधिक उभर आता था। और फिर इस विषय को लेकर शशांक के साथ उसकी तुलना करने की इच्छा अपने आप मन में पैदा हो जाती थी। जैसे, तुलना का एक बहाना उस दिन पैदा हुआ। हुआ यह कि कोई कपड़ा खोजते समय उसके ट्रंक के नीचे के हिस्से में उसका एक अधबुना जूता निकला। चार साल पहले की बात याद आ गई। उसका भाई हेमन्त उन दिनों जीवित था। सब लोग दार्जिलिंग गये हुए थे। आनन्द और मौज-मस्ती का अन्त नहीं था। हेमन्त और शशांक ने मिल कर तो जैसे हद कर दी थी। ऊर्मि अपनी एक मौसी से बुनाई का एक काम सीख आई थी। वह भैय्या के जन्म-दिन के लिए एक जोड़ा ऊनी जूता बुनने लगी। शशांक ने मजाक में कहा, 'अपने भैय्या को और चाहे जो कुछ दो, लेकिन जूता मत दो। भगवान मनु ने कहा है कि ऐसा करने से गुरुजन का अपमान होता है।'

ऊर्मि ने व्यंग्य करते हुए कहा, 'तो भगवान् मनु ने इस वस्तु का प्रयोग किस पर करने के लिए कहा है?'

शशांक ने गम्भीर मुँह बना कर कहा, 'असम्मान का सनातन अधिकार बहनोई को है। यह तो मेरा पावना है, सूद समेत भारी हो आया है।'

'ऐसा तो कुछ याद नहीं आता।'

'याद आने की बात नहीं है। उस समय तुम बहुत ही छोटी थी। इसीलिए जिस शुभ लग्न में तुम्हारी दीदी के साथ इस सौभाग्यशाली का विवाह हुआ था उस दिन सुहागरात के कर्णधार का पद तुम नहीं ग्रहण कर सकी थी। तब तुम अपने कर-पल्लवों से मेरा जो कान मलती वह

आज इन कर-पल्लवों से रचित होने वाले जूतों का रूप ले रही है। इसके ऊपर मेरा दावा है, यह मैं कहे देता हूँ।'

शशांक का यह दावा स्वीकार नहीं किया गया और वह जूता यथा-समय भेंट के रूप में भैय्या के चरणों में ही निवेदित हुआ। उसके कुछ समय बाद ऊर्मि को शशांक का एक पत्र मिला। इस पत्र को पाकर वह खूब हँसी थी। वह चिट्ठी अब भी उसके ट्रंक में पड़ी हुई थी। आज फिर उसे निकाल कर उसने पढ़ा—

'कल तो तुम चली गई। तुम्हारी स्मृति पुरानी होते न होते तुम्हारे नाम एक कलंक की बात फैल गई। उसे छिपा कर रखना मैं अपने कर्तव्य की अवहेलना समझता हूँ।

'मेरे पैरों में एक जोड़ी ताल के तले की चप्पल कई लोगों ने देखी है। लेकिन इससे भी अधिक उसके छिद्रों को पार करके निकलने वाली मेरी पदनख पंक्ति को लोगों की नजरों ने देखा है, जो मेघमुक्त चन्द्रमाला की भाँति दिखाई देती है। देखो, श्री भारतचन्द रचित 'अन्नदामंगल'। और उपमा की यथार्थता के विषय में सन्देह हो तो अपनी दीदी से पूछ सकती हो। आज जब मेरे आफिस के वृन्दावन नन्दी ने जूतों सहित मेरे पैरों को छूकर नमस्कार किया तो मेरे पैरों की जो हालत दिखाई दी उसकी गौरवहीनता से मेरा मन हिल उठा। मैंने नौकर से प्रश्न किया, 'महेश, क्या बता सकते हो कि किस अनधिकारी के श्रीचरणों ने मेरी चप्पलों के नये जोड़े मैंने गति पायी है?' तो वह सिर खुजा कर बोला 'हाँ, उस घर की ऊर्मि मौसी जब आप भी दार्जिलिंग गये थे तो साथ में चप्पलों की यह जोड़ी भी गई थी। एक तो आपके लौटने के साथ लौटी है लेकिन बाकी एक—' और यह कहते-कहते उसका मुँह लाल हो गया। मैंने उसे बड़ी डाँट बताई। वहाँ कई लोग बैठे थे। चप्पल-हरण बड़ा हीन कोटि का काम है। लेकिन मनुष्य का मन कमजोर होता है, वह लोभ का दमन नहीं कर पाता और ऐसा काम कर ही डालता है। ईश्वर भी शायद क्षमा कर

दिया करते हैं। इस तरह के चोरी के काम में थोड़ी सी बुद्धिमानी का भी परिचय दिया गया होता है तो दुष्कर्म की ग्लानि भी बहुत कुछ कम हो जाती है। लेकिन उठायी तो वह भी सिर्फ एक चप्पल! धिक्!

'जिसने यह काम किया है उसका नाम मैंने यथासम्भव गुप्त ही रखा है। लेकिन अगर वह स्वयं ही अपनी स्वाभाविक मुखरता के कारण इधर-उधर कहना शुरू कर दे तो सारा भंडाफोड़ हो सकता है। जहाँ मन दुरुस्त होता है, वहाँ चप्पल के कारण थोड़ा मनमुटाव भी निभ सकता है। महेश जैसे निन्दकों का मुँह तुम बहुत आसानी से एक जोड़े सुन्दर चप्पलों की सहायता से बन्द कर सकती हो। जरा उसकी हिमाकत तो देखो। पैरों का नाप साथ भेज रहा हूँ।'

चिट्ठी पाकर हँसते-हँसते ऊर्मि उनके लिए एक जूता बुनने लगी थी, लेकिन उसे खत्म नहीं कर सकी। उस काम में उसका उत्साह ही नहीं रह गया था। आज इस अधूरे जूते को खोज कर उसने तय किया कि इसे तैयार करके वह दार्जिलिंग यात्रा के वार्षिक दिन के उपलक्ष में वह शशांक को भेंट करेगी। कुछ सप्ताह बाद ही वह दिन आनेवाला था। उस यात्रा के उन सुखद दिनों की याद में उसने एक गहरी साँस ली—कहाँ गये वे दिन जो हँसी के उज्वल आकाश में तैरा करते थे। आज तो यह अवकाशविहीन कर्तव्य से कठोर जीवन मरुस्थल की तरह फैला हुआ है।

आज होली का दिन है। कई तरह के काम होने के कारण आज शशांक होली खेलने में योग देने का समय नहीं निकाल सका। आज की तो बात ही जैसे वे लोग भूल गये थे। ऊर्मि ने रोगशय्या पर लेटी अपनी जीजी के पैरों अबीर चढ़ाकर प्रणाम किया। फिर शशांक को खोजती हुई उसके आफिस में जा पहुँची। वह अपनी डेस्क पर झुका हुआ काम कर रहा था। पीछे से जाकर ऊर्मि ने उसके सिर पर अबीर मल दी। उसके सारे कागज-पत्र लाल हो उठे। और बस, फिर तो होली की मस्ती शुरू हो गई। डेस्क पर लाल स्याही की दावात थी। शशांक ने उसे ऊर्मि की साड़ी

पर उँडेल दिया। फिर उसका हाथ पकड़ कर उसी के आंचल से अबीर निकाल कर उसके मुँह पर मल दिया। फिर दौड़-भाग, धक्का-मुक्की, शोर-गुल। नहाने-खाने का समय निकल गया। ऊर्मि की हँसी की आवाज से सारा घर भर गया। आखिरकार शशांक की तबीयत खराब हो जाने की आशंका से शर्मिला ने नौकर के हाथ सन्देशा भेज कर दोनों को अलग किया।

दिन बीत गया, रात ढल आई। फूलों से गदराये कृष्णचूड़ा की शाखाओं को छोड़ कर पूर्ण चन्द्र आकाश में ऊपर उठ आया। फागुनी हवा का एक झोंका अचानक आया और बाग के पेड़-पौधों को तरंगित कर गया। खिड़की के पास ऊर्मि चुपचाप बैठी थी। उसे आज किसी तरह कोशिश करके भी नींद नहीं आ रही थी। हृदय में रक्त का हिल्लोल शान्त नहीं हुआ था। आम की बौर की सुगन्ध से मन भर उठा था। आज वसन्त में माधवी लता की प्रत्येक शिरा में फूल खिलने की जो वेदना थी, मानों जैसे वही ऊर्मि की समस्त देह में व्याप्त हो गई थी, और उसे भीतर से उत्सुक कर रही थी। पास ही स्नानागार में जाकर उसने सिर धोया। गीले तौलिये से बदन पोंछ लिया। बिस्तर पर करवट बदलते-बदलते वह गाढ़ी नींद में सो गई।

रात को लगभग तीन बजे उसकी नींद खुली। चाँद उस समय खिड़की के सामने नहीं था। घर में अँधेरा फैला था और बाहर प्रकाश और छाया से जड़ित सुपारी वृक्षों की वीथिका सामने फैली थी। ऊर्मि के हृदय को चीर कर जैसे रुलाई उमड़ी आ रही थी जो किसी भी प्रकार रुकना नहीं चाहती थी। वह तकिये में मुँह ढँक कर रोने लगी। यह जैसे प्राणों की रुलाई थी; इसकी कोई भाषा नहीं, कोई अर्थ नहीं। पूछने पर क्या वह बता सकती कि कहाँ से उसके मन और देह में वेदना का यह ज्वार उठा है और उसे बहाये ले जा रहा है।

सबेरे जब उसकी नींद खुली तब कमरे में धूप आ गई थी। सबेरे

के काम में ढील हो गई लेकिन थकान की बात याद करके शर्मिला ने उसे क्षमा कर दिया। किस बात के अनुताप से ऊर्मि आज इस तरह परेशान थी ? ऐसा उसे क्यों लग रहा था कि उसकी हार शुरू हो गई है। वह दीदी के पास जाकर बोली, 'दीदी, मैं तो तुम्हारा कुछ काम कर नहीं पाती। कहो तो घर लौट जाऊँ।'

आज शर्मिला उसे जाने से रोक न सकी। बोली, 'अच्छा, तू जा। तेरी पढ़ाई का नुकसान हो रहा है। बीच-बीच में जब समय मिला करे तो कभी आ जाया करना।'

शशांक उस दिन किसी काम पर निकल गया था। इसलिए मौका देख कर ऊर्मि उसी दिन चली आई।

शशांक उस दिन एक सेट लेकर घर पहुँचा था, जिससे यांत्रिक विधि से चित्र खींचे जा सकते थे। इसे वह ऊर्मि को देना चाहता था, और उसे इसका इस्तेमाल करना सिखाना चाहता था। लौट कर उसे अपनी जगह न पाकर उसने शर्मिला से पूछा, 'ऊर्मि कहाँ गई ?'

वह बोली, 'यहाँ उसकी पढ़ाई-लिखाई में असुविधा हो रही थी, इस-लिए अपने घर चली गई।'

'कुछ दिनों तक असुविधा सहने का निश्चय करके ही तो वह यहाँ आई थी। और आज अचानक यह असुविधा की बात कैसे उठ खड़ी हुई ?'

उसके कहने के लहजे से शर्मिला ने समझा कि वह उस पर ही सन्देह कर रहा है। इस विषय में कोई व्यर्थ का तर्क न करके वह बोली, 'मेरी ओर से तुम उसे बुला लाओ, निश्चय ही उसे कोई एतराज नहीं होगा।'

उधर ऊर्मि जब लौट कर अपने घर आई तो उसने देखा कि बहुत दिनों से नीरद की चिट्ठी आई हुई पड़ी थी और उसकी राह देख रही

थी। मारे डर के वह उसे खोल नहीं सकी। मन ही मन वह जानती थी कि मेरी ओर से अपराध जमा हो गये हैं। पहले तो उसने दीदी की बीमारी का बहाना बना कर नियम भंग होने की कैफियत दी थी, लेकिन अब वह बहाना भी काफी पुराना हो गया था। शशांक ने इधर खास तौर से जिद करके शर्मिला के लिए दिन और रात के लिए अलग-अलग नर्सें रख दी थीं। डाक्टर के आदेश के अनुसार वे लोग रोगी के कमरे में घर के लोगों का आना-जाना भी समय देख कर बन्द कर दिया करती थीं। ऊर्मि खुद भी जानती थी नीरद दीदी की बीमारी वाले बहाने को इतना महत्व नहीं देगा। वह कहेगा, 'बेकार की बात है।' और है ही सचमुच बेकार की बात। मेरी तो वहाँ कोई जरूरत है नहीं। पश्चात्ताप भरे मन से उसने निश्चय किया कि इस बार अपना दोष स्वीकार कर लूँगी और क्षमा माँग लूँगी। और आगे कभी गलती न करने और नियम भंग न करने की प्रतिज्ञा करूँगी।

नीरद की चिट्ठी खोलने के पहले उसने उसके पुराने फोटो को बाहर निकाला और उसे फिर से मेज पर रख दिया। वह जानती थी कि जब शशांक कभी यहाँ आयेगा और इसे देखेगा तो इसका खूब मजाक बनायेगा। लेकिन उसने निश्चय किया कि उसके व्यंग्य से वह जरा भी कुंठित न होगी और न कोई संकोच ही करेगी। इसे वह अपने प्रायश्चित्त की तरह ही लेगी। दीदी के घर वह इस बात को दबा लेती थी कि नीरद के साथ उसका विवाह होगा। दूसरे लोग भी इस प्रसंग को कभी नहीं उठाते थे, क्योंकि यह सब को अप्रिय था। लेकिन आज मुट्ठी भींच कर ऊर्मि ने तय किया कि आगे से अब वह अपने सारे व्यवहारों में इस सम्बन्ध की घोषणा स्पष्ट रूप से किया करेगी। मँगनी की अँगूठी को उसने कई दिनों से छिपा रखा था। आज उसे निकाल कर उसने फिर से पहन लिया। यह अँगूठी बहुत ही सस्ती कीमत की थी। नीरद ने अपनी ईमानदारी भरी गरीबी के गर्व में इस सस्ती अँगूठी को हीरे से भी मँहगी अँगूठी के रूप में उसे दिया था, और कहा था, 'अँगूठी का मूल्य

से मेरा मूल्य नहीं निश्चित होता, बल्कि मेरे मूल्य से अँगूठी का मूल्य निश्चित होता है।'

इस प्रकार अपने दोष को यथासाध्य संशोधित कर ऊर्मि ने नीरद का लिफाफा खोला।

चिट्ठी पढ़ कर वह मारे खुशी के उछल पड़ी। नाचने की इच्छा हुई। लेकिन नाचने का उसे अभ्यास नहीं था। बिस्तर पर सितार पड़ा था। उसे उठा कर बिना सुर ठीक किए ही वह मनमाने ढंग से उसे झंकारने लगी।

और ठीक इसी समय शशांक ने घर में प्रवेश किया। उसने आते ही पूछा 'क्या मामला है, क्या शादी का दिन ठीक हो गया है?'

'हाँ, जीजा जी, ठीक हो गया है।'

'तो अब किसी प्रकार भी इधर-उधर होने की गुंजाइश नहीं?'

'न बिलकुल नहीं।'

'तो फिर इसी समय शहनाई का इन्तजाम कर आऊँ, और भीमचन्द्र नाग के यहाँ संदेश का आर्डर भी दे आऊँ?'

'नहीं, आपको कुछ नहीं करना होगा।'

'तो क्या सब कुछ खुद ही करोगी? धन्य हो, वीरांगने! और लड़की का आशीर्वाद?'

'उस आशीर्वाद का रुपया मेरे ही जेब से गया है।'

'तो यों कहो कि मछली के तेल में ही मछली तली गई। कुछ ठीक से समझ में नहीं आया।'

'लो, यह लो, समझ लो।' और उसने नीरद की चिट्ठी उसके हाथ पर रख दी।

चिट्ठी पढ़ कर शशांक खिलखिला कर हँस पड़ा।

नीरद ने चिट्ठी में लिखा था कि रिसर्च के जिस दुरूह कार्य में वह अपने आपको लगा देना चाहता, वह भारत में सम्भव नहीं हो सकता। इसलिए उसे अपने जीवन में एक और बड़ा बलिदान करना होगा। ऊर्मि के साथ सम्बन्ध-विच्छेद किये बिना अब उसका काम नहीं चल सकता। एक युरोपीय महिला उसके साथ विवाह करके उसके कार्य में अपना योग देना चाहती है। और काम तो वही है, वह चाहे भारत में हो या विलायत में। राजाराम बाबू ने जिस काम के लिए धन देना

चाहा था उसका कुछ हिस्सा अगर विलायत में ही लगा दिया जाय तो इसमें कोई अन्याय नहीं होगा। इस मृत आत्मा को संतोष ही होगा और उनके प्रति सम्मान भी प्रकट होगा।

शशांक ने कहा, 'तो इस जीवित आत्मा को कुछ न कुछ देकर दूर देश में ही जिलाये रख सको तो इसमें बुरा क्या है ? क्योंकि अगर रुपया देना बन्द कर दोगी तो वह भूख की ज्वाला से अधमरी होकर यहाँ दौड़ी चली आयेगी।'

ऊर्मि ने हँस कर कहा, 'अगर आपके मन में इस तरह का डर हो तो रुपया आप ही भेजिये, मैं तो अब एक पैसा भी नहीं देती।'

शशांक बोला, 'तो फिर से मन तो नहीं बदलेगा न ? मानिनी का अभिमान तो अटल ही बना रहेगा न ?'

'अगर मन बदला भी तो इससे आपको क्या, जीजा जी?'

'सवाल का सही जवाब दूँगा तो तुम्हारा अहंकार बढ़ जायगा, इसलिए तुम्हारी भलाई के लिए चुप रहता हूँ। लेकिन लगता है, इस आदमी में हिमाकत कम नहीं है!'

ऊर्मि के मन से एक बड़ा भारी बोझ उतर गया, बहुत दिनों का बोझ। इस छुटकारे से वह इतनी खुश हुई कि कुछ तय ही नहीं कर पायी कि क्या करे और क्या न करे। उसने कामों की उस सूची को फाड़ कर फेंक दिया जिसे नीरद जाते समय उसे दे गया था। गली में एक भिखारी भीख माँग रहा था। उसने उसकी ओर अपनी अँगूठी फेंक दी।

फिर पूछा, 'पेंसिल से निशान की हुई इन किताबों को कोई पुरानी किताबोंवाला तो खरीदेगा ही, या नहीं ?'

'और अगर न खरीदे तो क्या होगा ?'

'यही डर है कि कहीं इसमें पुराने जामने का भूत डेरा न डाले रहे। अगर कहीं यह भूत आधी रात को मेरे सिरहाने खड़ा हो जाय तो ?'

'अगर ऐसी आशंका है तो पुरानी किताबोंवाले की प्रतीक्षा करने की जरूरत नहीं। मैं खुद खरीद लूँगा।'

'इन्हें खरीद कर क्या करेंगे ?'

'हिन्दू शास्त्रों के अनुसार अन्त्येष्टि संस्कार। अगर इससे तुम्हारे मन को सान्त्वना मिले तो गया तक जाने को तैयार हूँ।'

'ना, इतनी क्षति सहन न हो सकेगी।'

'तो खैर अपनी लाइब्रेरी में इनका पिरामीड खड़ा करके इनकी ममी बना कर रख छोड़ूँगा।'

'लेकिन आज आप अपने काम पर नहीं जा सकेंगे।'

'सारे दिन ?'

'हाँ, सारे दिन।'

'क्यों, क्या करना होगा ?'

'हम लोग जरा मोटर पर घूमेंगे।'

'तो दीदी से छुट्टी माँग आओ।'

'नहीं मैं लौट कर आऊँगी तभी कहूँगी दीदी से। उस समय अगर मुझ पर खूब डाँट भी पड़ेगी तो मुझे बरदाश्त हो जायगी।

'अच्छी बात है, मैं तैयार हूँ। मैं भी तुम्हारी दीदी की डाँट पचा लेने के लिए तैयार हूँ। मोटर का टायर भी अगर इस यात्रा के वेग में फट जाय तो मुझे कोई गम न होगा। पैंतालीस मील की रफ्तार से दो-चार आदमियों को कुचल कर जेल तक पहुँचने में भी कोई एतराज न होगा। लेकिन पहले तीन बार प्रतिज्ञा करो कि इस मोटर की रथ-यात्रा के बाद तुम हमारे ही घर लौट चलोगी।'

'हाँ, चलूँगी, चलूँगी, चलूँगी !'

मोटर पर घूमने के बाद दोनों भवानीपुर वाले घर में लौट आये, लेकिन पैंतालीस मील की रफ्तारवाला वेग तब भी उन दोनों के रक्त में बाकी था, और वह किसी तरह भी कम होना नहीं चाहता था। संसार का सारा भय, दायित्व और लज्जा इस वेग के सामने लुप्त हो गये।

कई दिनों तक शशांक अपने कामकाज को भूला रहा। मन ही मन उसने सोचा कि यह अच्छा नहीं हो रहा है। रात को बिस्तर पर सोये-सोये वह अपनी दुस्संभावनाओं को खूब बढ़ाचढ़ा कर देखता था। लेकिन दूसरे दिन फिर से 'स्वाधिकार प्रमत्त' मेघदूत के यक्ष की तरह हो जाता था। जिस तरह एक बार शराब पीने से उसके अनुताप को ढँकने के लिए फिर से शराब पीना पड़ता है।

कुछ दिन इसी प्रकार बीत गये। आँखों में खुमारी आई, मन भर आया।

अपने को ठीक-ठीक समझने में ऊर्मि को थोड़ा समय लगा। लेकिन फिर वह एक दिन अचानक चौंक पड़ी। और तब उसने अपने को समझा।

न जाने क्यों वह मथुरा भैया से डरा करती थी। बराबर वह उसकी नजर बचा कर निकल जाने का प्रयत्न करती थी। उस दिन मथुरा सबेरे दीदी के घर आया और दोपहर तक रह कर चला गया। उसके बाद दीदी ने उर्मि को अपने पास बुलाया। उसका चेहरा कठोर होकर भी शान्त था। वह बोली, 'रोज-रोज उनके काम में बाधा डाल कर यह क्या अनर्थ कर रखा है तूने ?'

ऊर्मि डर गई। बोली, 'क्या हुआ है ?'

शर्मिला ने कहा, 'मथुरा भैया बता गये हैं कि कुछ दिनों से तेरे जीजा अपना काम बिलकुल नहीं देख पा रहे हैं। जवाहरलाल के हाथ काम सौंप दिया था, और उसने खुले आम माल-मसाले की चोरी शुरू कर दी। बड़े-बड़े गोदामों की छतें झँझरी हो गई हैं। उस दिन जब पानी बरसा तब इसका पता लगा। माल बरबाद हो रहा है। हमारी कम्पनी का बड़ा नाम है, इसीलिए उन लोगों ने जाँच नही की थी। अब बड़ी भारी निन्दा और हानि गर्दन पर सवार हो गई है। मथुरा भैया अलग होना चाहते हैं।'

ऊर्मि की छाती जोरों से धड़कने लगी। एक क्षण में ही जैसे उसने अपने मन के छिपे हुए रहस्य को देख लिया। वह स्पष्ट समझ गई कि न जाने कब अनजाने में उसके मन का एक कमजोर कोना मतवाला हो उठा था। भला-बुरा कुछ भी वह तब नहीं सोच पायी थी। शशांक का काम ही जैसे उसका प्रतिद्वन्द्वी था। उसे उसके कामकाज से अपने पास खींच लाने के लिए ऊर्मि हमेशा छटपटाया करती थी। कई बार ऐसा हुआ था कि शशांक स्नानागार में होता और कोई मिलने आता तो वह कहला भेजती थी, 'कह दो अभी भेंट नहीं होगी, फिर आये।'

क्योंकि उसे हमेशा डर बना रहता था कि स्नान से निकलते ही शशांक ने अगर काम सँभाल लिया तो सम्भव है उसे फिर फुरसत ही न मिले और फिर उसका दिन अकेला ही कटे। आज अपने इस नशे की भयानक मूर्त्ति उसके सामने आ खड़ी हुई थी। वह उसी समय दीदी के पैरों में गिर पड़ी और रुँधे हुए गले से बोली, 'मुझे तुम अपने घर से निकाल दो दीदी। अभी निकाल बाहर करो!'

आज दीदी ने तय कर लिया था कि ऊर्मि को क्षमा नहीं करेगी। लेकिन उसका मन पिघल गया।

वह धीरे-धीरे ऊर्मि के सिर पर हाथ फेरने लगी और बोली, 'कुछ चिन्ता न कर। कुछ न कुछ उपाय होगा ही।'

ऊर्मि उठ कर बैठ गई और कहने लगी, 'दीदी, तुम लोगों का ही नुकसान क्यों हो? मेरे पास भी तो रुपया है।'

'पागल हुई है क्या। मेरे पास नहीं है कुछ? मथुरा भैया से मैंने कह दिया है कि वे कुछ गड़बड़ न करें, रुपया मैं भर दूँगी। और तुझे भी कहती हूँ कि कहीं ऐसा न हो कि तेरे जीजा जी को यह मालूम हो जाय कि मैं भी इस बारे में सब कुछ जानती हूँ। उन्हें यह सब बिलकुल न मालूम होने पाये!'

'माफ करो दीदी, मुझे माफ करो!' कह कर ऊर्मि अपनी दीदी के पैरों पर माथा रगड़ने लगी।

शर्मिला आँखों से आँसू पोंछ कर थके हुए स्वर में बोली, 'कौन किसे माफ करेगा, बहन ? यह संसार बड़ा जटिल है। जो सोचती हूँ वह नहीं होता। जिसके लिए अपना सब कुछ बाजी पर लगा देती हूँ वही खिसक जाता है।'

इसके बाद ऊर्मि दीदी को एक क्षण के लिए भी अकेला नहीं छोड़ती थी। उसकी सेवा-सुश्रुषा में ही लगी रहती थी। दवा देना, नहलाना, खिलाना, सुलाना, सारी छोटी-मोटी सेवाएँ वह खुद करने लगीं। उसने फिर से पढ़ना भी शुरू कर दिया, और वह भी दीदी के पास ही बैठ कर। खुद पर अब अपना विश्वास नहीं रह गया था न शशांक पर ही था।

इसका फल यह हुआ कि शशांक अब बार-बार रोगिणी के कमरे में आने लगा। पुरुषोचित अन्धता के कारण वह यह नहीं समझ सका कि उसकी छटपटाहट का अर्थ उसकी स्त्री से छिपा नहीं रह सकता। ऊर्मि मारे शर्म के गड़ जाती। शशांक मोहनबागान के फुटबाल मैच को देखने का लालच लेकर आता है, लेकिन व्यर्थ। पैंसिल से चार्ली चेपलिन का विज्ञापन अखबार में निशान लगा कर दिखाता है, लेकिन सब बेकार। ऊर्मि जब उसके लिए दुर्लभ नहीं थी तब भी वह विघ्न-बाधा के बीच काम किया करता था लेकिन अब यह एकदम असम्भव हो उठा है।

उसकी इस परेशानी से पहले तो शर्मिला अपने मन में बहुत सुखी होती थी। लेकिन बाद में उसने देखा कि उसकी पीड़ा प्रबल हो उठी है, मुँह सूख आया है और आँखों के नीचे काली झाँई पड़ गई है। ऊर्मि अब भोजन के समय उसके पास नहीं बैठती, इसलिए खाने में उसकी रुचि और खाने का परिमाण भी कम होता जा रहा है। कुछ दिनों पहले घर में आनन्द की जो बाढ़ आई थी वह जैसे अब बिलकुल उतर गई है।

अपने चेहरे को सँवारने के प्रति शशांक हमेशा बहुत उदासीन रहा करता था। कभी नाई से बाल बनवाता तो अपना सिर ही मुँड़ा लेता था।

शर्मिला पहले तो इसके लिए कहा सुना किया करती थी। हार कर उसे चुप रह जाना पड़ता था, इसलिए फिर उसने कहना ही बन्द कर दिया। लेकिन बीच में ऊर्मि अगर जरा हँस देती थी तो शशांक फौरन रास्ते पर आ जाता था। यही नहीं, ऊर्मि के कारण ही पहली बार उसने बालों में सुगंधित तेल डालना शुरू किया था। लेकिन आजकल उसने यह सब बन्द कर रखा था और इसी से उसकी अन्तर्वेदना का पता चल जाता था। और यह इतनी तीव्र थी कि अब प्रकट-अप्रकट रूप से उसकी हँसी करना भी सम्भव नहीं रह गया था। शर्मिला का क्षोभ इससे और भी बढ़ने लगा। पति के प्रति करुणा और अपने प्रति धिक्कार से उसका हृदय फट पड़ने लगा और इससे उसके रोग की पीड़ा भी बढ़ने लगी।

बड़े मैदान में किले के सिपाहियों का खेल होनेवाला था। डरते-डरते शशांक ने पूछा, 'ऊर्मि, खेल देखने चलोगी? मैंने अच्छी सी जगह रिजर्व करा रखी है।'

ऊर्मि के कोई उत्तर देने के पहले ही शर्मिला ने कहा, 'जायगी क्यों नहीं, जरूर जायगी। जरा बाहर घूम आने के लिए वह छटपटा रही है।'

इससे शशांक को बढ़ावा मिला और उसने दो-चार दिन बाद फिर से मौका देख कर पूछा, 'सर्कस चलोगी?'

इसमें ऊर्मिमाला का उत्साह भी काम आया।

कुछ दिनों बाद फिर निमन्त्रण मिला, 'बोटानिकल गार्डन?'

इसमें जरा बाधा का अनुभव हुआ। दीदी को अकेली छोड़ कर देर तक बाहर रहने के पक्ष में ऊर्मि नहीं थी।

लेकिन दीदी ने स्वयं शशांक का पक्ष लिया। उसने कहा, 'न मालूम कहाँ-कहाँ के कुली मजूरों के बीच दोपहर तक हैरान हुआ करते हैं, सारा दिन धूल और बात के बीच ही बीत जाता है। बाहर की हवा नहीं खायेंगे तो शरीर का क्या हाल होगा?'

और उन दोनों के लिए इस युक्ति पर स्टीमर में राजगंज तक घूम आना असंगत नहीं रहा।

शर्मिला मन ही मन कहती, जिसके लिए उन्हें काम-काज के छूट जाने की चिन्ता नहीं है, उसका छूट जाना उन्हें बरदाश्त न होगा।

शशांक को किसी ने स्पष्ट रूप से कहा नहीं, लेकिन फिर भी वह सब ओर से एक अव्यक्त ढंग से समर्थन पाने लगा था। शशांक ने एक तरह से अपने मन में यह समझ लिया था कि इससे शर्मिला के मन में कोई पीड़ा नहीं है, उन दोनों को साथ प्रसन्न देख कर वह भी प्रसन्न रहेगी। साधारण स्त्री के लिए यह सम्भव नहीं था लेकिन शर्मिला तो असाधारण थी। शशांक जिन दिनों नौकरी करता था, तब किसी कलाकार ने पेंसिल से शर्मिला का एक चित्र बनाया था। इतने दिनों तक वह पोर्टफोलियो में ही पड़ा था। उसे निकाल कर उसने एक अच्छी दूकान से खूब कीमती फ्रेम में मढ़वाया और उसे अपने आफिसवाले कमरे में जहाँ वह बैठता था उसके ठीक सामने वाली दीवार पर टाँग दिया करता था।

अन्त में एक दिन शशांक जब ऊर्मि को अपने बगीचे में यह दिखा रहा था कि सूरजमुखी के फूल कैसे फूले हैं, अचानक उसने ऊर्मि का हाथ पकड़ लिया और कहा, 'तुम जानती हो कि मैं तुम्हें प्यार करता हूँ। और तुम्हारी दीदी? वे तो देवी हैं। मैं उनकी जितनी भक्ति करता हूँ उतनी और किसी की नहीं करता। वे पृथ्वी की कोई साधारण मानवी नहीं हैं, वे हम लोगों की पहुँच से बहुत ऊपर रहने वाली हैं।'

दीदी ने ऊर्मि को बार-बार स्पष्ट रूप से यह समझा दिया है कि जब वे इस संसार में नहीं रहेंगी तब उन्हें यह देख कर सबसे बड़ी सान्त्वना मिलेगी कि ऊर्मि उनके घर में है। इस घर में और किसी स्त्री का आगमन होगा यह कल्पना भी दीदी को कष्ट पहुँचाती थी। और यह अवस्था भी

दीदी के लिए असह्य थी कि शशांक का ध्यान रखने के लिए उसके बाद कोई स्त्री ही न रहे। दीदी ने उसे रोजगार की बात भी समझा दी कि अगर उनके प्रेम में बाधा पड़ी तो सारा कारबार चौपट हो जायगा। उनका मन जब तृप्त रहेगा तो कारबार अपने आप ढर्रे पर आ जायगा।

शशांक का मन उतावला हो गया है। वह एक ऐसे चन्द्रलोक में रहने लगा है जहाँ संसार की सारी जिम्मेदारी सो जाती है। आजकल रविवार मनाने के मामले में उसकी निष्ठा एक पक्के ईसाई की तरह हो गई है, उस दिन वह जरूर छुट्टी मनाता है। एक दिन वह जाकर शर्मिला से कहने लगा 'देखो, जूट मिलवाले अँग्रेजों से उनका मोटर लंच मिल गया है। कल रविवार है। सोचता हूँ, ऊर्मि को लेकर डायमन्ड हारबर तक हो आऊँ। शाम के पहले ही लौट आऊँगा।'

शर्मिला के दिल को जैसे किसी ने मरोड़ दिया हो, मन की पीड़ा से तड़प उठी। लेकिन शशांक यह न देख सका। शर्मिला ने सिर्फ एक सवाल किया, 'खाने-पीने की क्या व्यवस्था की है?'

उसने बताया, 'होटल में ठीक कर लिया है।'

एक दिन जब यह सब ठीक करने का भार शर्मिला पर रहता था तब शशांक इन बातों से उदासीन रहा करता था। और आज जैसे बात ही बदल गई है।

और ज्यों ही शर्मिला ने अपनी अनुमति दी, 'अच्छा, हो आना।' कि फिर बिना एक क्षण की भी प्रतीक्षा किये शशांक वहाँ से बाहर चला आया। शर्मिला की इच्छा हुई कि जोरों से चीख कर रोये। वह तकिये में अपना मुँह छिपा कर सिसकने लगी और कहने लगी, 'अब अधिक क्यों जी रही हूँ?'

कल रविवार को उनके विवाह का वार्षिक दिन था। आज तक इसे मनाने में कभी नागा नहीं हुआ था। इस बार भी उसने पति को बिना बताये ही अपने बिस्तर पर लेटे-लेटे सारी तैयारी कर ली थी। ब्याह के दिन शशांक ने लाल बनारसी धोती का जो जोड़ा पहना था, वही उसे पहनायेगी और उसके गले में माला डाल कर अपने सामने ही बिठा कर खाना

खिलायेगी। धूपबत्ती जला देगी और पास के कमरे में ग्रामोफोन पर शहनाई बजती रहेगी। इस अवसर पर शशांक बिना उसे बताये चुपके से उसके लिए कोई अच्छी सी चीज खरीद लाता था। शर्मिला ने सोचा कि इस बार भी जरूर देंगे, शायद कल मालूम हो।

आज वह कुछ भी सहन नहीं कर पा रही थी। कमरे में जब कोई नहीं होता तब वह बार-बार चिल्ला पड़ती थी, 'झूठ है सब कुछ, झूठ है सब कुछ! क्या होगा इस झूठे खेल से!'

रात में उसे नींद नहीं आई। और सबेरे मोटर दरवाजे के पास से निकल गई, शर्मिला सुनती ही रह गई। वह फूट कर रो पड़ी, 'हे ईश्वर, तुम झूठे हो!'

अब उस का रोग तेजी से बढ़ चला। जिस दिन हालत बहुत खराब हो गई उस दिन शर्मिला ने पति को अपने पास बुलवाया। शाम का समय था, कमरे में धुँधला सा प्रकाश था। नर्स को हट जाने का संकेत किया। फिर पति को अपने पास बिठा कर और उसका हाथ अपने हाथ में लेकर उसने कहा, 'जीवन में मैंने तुम्हें ईश्वर के वरदान की तरह पाया था। लेकिन इसके योग्य शक्ति ईश्वर ने मुझे नहीं दी। जितना मैं कर सकती थी, मैंने किया। मुझसे अपराध अनेक हुए हैं, क्षमा करना।'

शशांक न मालूम क्या कहने जा रहा था कि उसे रोक कर शर्मिला ने कहा, 'ना, कुछ बोलो मत तुम। मैं ऊर्मि को तुम्हारे हाथ दिये जा रही हूँ। वह मेरी बहन है। उसमें तुम मुझे ही पाओगे—इसके अलावा और भी बहुत कुछ पाओगे जो तुम मुझ में नहीं पा सके थे। नहीं, तुम बोलो मत कुछ, सिर्फ मेरी सुन लो। मरते समय ही मेरा सौभाग्य पूरा हुआ है—आज मैं तुम्हें सुखी तो कर सकी!'

नर्स ने बाहर से आवाज दी, 'डाक्टर साहब आये हैं।'

शर्मिला ने जवाब दिया, 'लिवा आओ!'

और दोनों की बात वहीं खत्म हो गई।



शर्मिला के मामा हर प्रकार की अशास्त्रीय चिकित्सा के कायल थे। इन दिनों वे एक सन्यासी की सेवा में मगन थे। जब डाक्टरों ने शर्मिला

के बारे में जवाब दे दिया तो उसके मामा ने हठ किया कि हिमालय से आये हुए बाबा जी की दवा भी आजमा लेनी चाहिये। वे एक तिब्बती जड़ी का चूर्ण देते थे और खूब दूध पीने की राय देते थे।

शशांक इस तरह की नीमहकीमी को बरदाश्त नहीं कर सकता था। उसने आपत्ति की। शर्मिला ने कहा, 'हर्ज क्या है, और कोई फल तो होगा नहीं, मामाजी को संतोष हो जायगा।'

लेकिन बाबा जी की दवा का तो देखते-देखते असर हुआ। साँस की तकलीफ कम हो गई, और खून का उठना भी बन्द हो गया। सात दिन बीते, पन्द्रह दिन बीते। शर्मिला चंगी होकर उठ बैठी। डाक्टर ने कहा, 'मृत्यु के करीब जाकर शरीर उसकी ओर से बेपरवाह हो जाता है, और आखिरी धक्के के समय कभी-कभी अपने को सँभाल भी लेता है।'

तो इस तरह शर्मिला जी गई।

उसने सोचा कि यह कैसी आफत आई! अब क्या करूँ? यह जीना तो मरने से भी कठिन है! और उधर ऊर्मि अपना सामान सँभाल रही थी। अब यहाँ उसका नाटक समाप्त हो गया था।

दीदी ने आकर कहा, 'नहीं, तू नहीं जा सकेगी।'

'यह क्या कह रही हो?'

'क्या हिन्दू जाति में कभी ऐसा नहीं हुआ कि किसी लड़की ने बहन की सौत होकर घरबार चलाया हो?'

'छिः!'

'तो लोक निन्दा का भय है? लेकिन क्या विधाता के विधान से भी बढ़ कर लोगों की बात होगी?'

उसने शशांक को बुला कर कहा, 'चलो, हम लोग नेपाल चलें। वहाँ के दरबार में तुम्हें नौकरी भी तो मिलने वाली थी! जरा कोशिश करोगे तो मिल ही जायगी। वहाँ कोई बात नहीं उठेगी!'

शर्मिला ने किसी को दुविधा में पड़ने का अवकाश ही नहीं दिया। जाने की तैयारी होने लगी। ऊर्मि तब भी उदास होकर कोने-कोने छिपती रही।

शशांक ने उससे कहा, 'आज अगर तुम मुझे छोड़ जाओगी, तो मेरी क्या दशा होगी, जरा सोचो तो सही!'

ऊर्मि ने उत्तर दिया, 'मैं तो कुछ सोच ही नहीं पा रही हूँ। तुम दोनों जो करोगे वही होगा।'

सारी तैयारी करने में थोड़ा समय लगा। इसके बाद जब समय करीब आया तो ऊर्मि ने कहा, 'और सात दिन रुक जाओ। मैनेजर काका से कुछ बात कर लूँ।'

और वह चली गई।

इसी बीच मथुरा चहेरा लटकाये शर्मिला के पास आया। उसने कहा, 'तुम लोगों ने यहाँ से जाने का ठीक ही समय चुना। तुम्हारे साथ बात पक्की हो जाने के बाद से ही मैंने शशांक से अपना काम अलग कर लिया था। अपने साथ मैंने उसके नफे-नुकसान की जिम्मेदारी नहीं रखी। इधर काम से हाथ खींचने के उद्देश्य से शशांक कई दिनों से हिसाब मिला रहा है। पता चला कि तुम्हारा सारा रुपया डूब गया है। उसके बाद भी जो लोगों का देना बाकी रहता है, उसके लिए शायद मकान बेचना पड़ेगा।'

शर्मिला ने पूछा, 'सर्वनाश की नौबत यहाँ तक आ गई, और वे जान भी न सके!'

मथुरा बोला, 'सर्वनाश तो बिजली के गिरने की तरह आता है। जिस क्षण मारता है, उससे पहले पता ही नहीं चलता। शशांक समझता था कि सिर्फ थोड़ा नुकसान हो रहा है। उस समय थोड़े में ही सब कुछ आसानी से सँभाल लिया जा सकता था, लेकिन नासमझी हो गई। कारबार की गलती को जल्दी-जल्दी सुधार लेने के लिए कोयला बाजार में वह तेजी मन्दी के दाँव लगाने लगा। लेकिन वहाँ भी तेजी के बाजार में जो खरीदा था, उसे मन्दी के बाजार में बेचना पड़ा। अचानक आज मालूम हुआ कि आतिशबाजी की तरह सब कुछ उड़ गया है, केवल

राख बच रही है। इस समय अगर भगवान की कृपा से नेपाल में काम मिल जाय तो तुम लोगों को इधर-उधर भटकना नहीं पड़ेगा।'

शर्मिला गरीबी से डरती नहीं थी। उलटे वह जानती थी कि अभाव के समय पति की गिरिस्ती में उसका स्थान और भी महत्व का हो जायगा। उसे विश्वास था कि वह दरिद्रता की कोठरता को हलका करके किसी तरह दिन काट ले जायगी। खास तौर से हाथ में अब जो कुछ गहने बच रहे हैं उनसे उसे विशेष कष्ट नहीं होगा। यह बात भी संकोच के साथ मन में रह-रहकर उठ आती कि ऊर्मि के साथ विवाह हो जाने के बाद उसकी सम्पत्ति भी तो पति को ही मिलेगी। लेकिन इस तरह जिन्दगी के बचे-खुचे दिन काट लेना ही तो सब कुछ नहीं है। इतने दिनों तक उसके पति ने जो अपने हाथों इतनी सम्पत्ति जोड़ी थी, जिसके लिए शर्मिला ने भी अपने हृदय की अनेक प्रबल माँगों को जानबूझ कर दबा रखा था, जो उन दोनो के सम्मिलित जीवन की मूर्तिमान आशा थी, वही आज देखते-देखते बिला गई! इस गौरव-हानि ने जैसे उसकी कमर तोड़ दी। वह मन ही मन कहने लगी कि अगर मैं उस समय मर गई होती तो इस धिक्कार से तो बच जाती! मेरे भाग्य में जो था वह हुआ, लेकिन यह क्या पता था कि दारिद्रय और अपमान की यह स्थिति भी देखनी होगी! जिसके मोह में पड़ कर यह दुर्भाग्य आज सहन करना पड़ रहा है, उसे बहुत सम्भव है एक दिन ऐसा भी आयेगा जब वे माफ नहीं कर सकेंगे। उसके हाथ का अन्न जहर-सा मालूम होगा। अपनी मनमानी का यह परिणाम देख कर उन्हें लाज आयेगी, और तब वे मदिरा को दोष देंगे। अगर अन्त तक ऊर्मि की सम्पत्ति पर अवलम्बित होना आवश्यक ही हो जाय तो वे इस क्षोभ से ऊर्मि को कभी चैन नहीं लेने देंगे।

मथुरा के साथ हिसाब मिलाने पर शशांक को मालूम हुआ कि शर्मिला का सारा रुपया उसके रोजगार में डूब गया है। अब तक शर्मिला ने यह सब नहीं बताया था, उसने मथुरा से ही सब कुछ तय कर लिया था।

शशांक को याद आया कि कभी उसने नौकरी छोड़ने के बाद शर्मिला से ही रुपया लेकर अपना कारबार जमाया था। और आज अपना कारबार नष्ट करके शर्मिला का ऋण अपने सिर लाद कर ही वह फिर से नौकरी करने चला है। यह ऋण तो अब चुकाया जा नहीं सकता—नौकरी की बँधी आमदनी से भला कभी ऋण चुकता है! नेपाल जाने में दस दिन की और देर थी। वह रात भर सो नहीं सका। सबेरे तड़प कर उठा और आइने के सामने जा खड़ा हुआ। उसने मेज पर जोर से मुक्का मार कर कहा, 'मैं नहीं जाता नेपाल!' उसने दृढ़ता से प्रतिज्ञा की 'हम दोनों ऊर्मि को साथ लेकर यहीं कलकत्ते में रहेंगे—समाज की चढ़ी हुई भौंहों के सामने ही! और मैं इसी कलकत्ते में अपने टूटे रोजगार को जोड़ कर फिर से नये सिरे से खड़ा कर लूँगा!'

कौन-कौन सी चीजें साथ ले चलनी हैं और कौन-कौन सी छोड़ देनी हैं, इसकी एक सूची शर्मिला तैयार कर रही थी कि इतने में पुकार हुई, 'शर्मिला! शर्मिला!' वह जल्दी से खाता फेंक कर पति के पास पहुँची। घबरा कर काँपते हुए दिल से उसने पूछा, 'क्या हुआ?'

वह बोला, 'मैं नहीं जाता नेपाल। मुझे कोई परवाह नहीं समाज की! यहीं रहूँगा मैं!'

'क्यों, क्या हुआ?'

'काम है!'

वही पुराना बहाना! काम है! शर्मिला का दिल थरथर काँपने लगा।

वह बोला, 'शर्मिला, यह न समझना कि मैं डरपोक आदमी हूँ। जिम्मेदारी छोड़ कर भागनेवाला मैं नहीं! मैं इतना पतित हो सकता हूँ—यह तुम न सोचना!'

शर्मिला ने पास जाकर उसका हाथ थाम लिया और कहा, 'क्या हुआ है, मुझे कुछ समझा कर तो कहो!'

शशांक ने कहा, 'मैंने फिर तुमसे ऋण लिया है ! इस बात को तुम छिपाओ मत ।'

'अच्छा, अच्छा । तो फिर हुआ क्या ?'

'उसी दिन की तरह मैं फिर आज से तुम्हारा कर्ज चुकाने जाता हूँ । जो डुबोया है उसे अवश्य निकाल लाऊँगा—यह मेरी प्रतिज्ञा है ! उस दिन जिस प्रकार तुमने मुझ पर विश्वास किया था, उसी तरह फिर से विश्वास करना !'

शर्मिला ने अपने पति की छाती पर सिर रख कर कहा, 'तुम भी मेरे ऊपर विश्वास करना । मुझे काम-काज समझा देना । ऐसी शिक्षा तुम मुझे आज से ही दो कि मैं तुम्हारे योग्य हो सकूँ ।'

बाहर से आवाज आई, 'चिट्ठी आई है !'

ऊर्मि के हाथ की लिखी दो चिट्ठियाँ थीं । उनमें से एक शशांक के नाम थी—

'मैं इस समय बम्बई के रास्ते में हूँ । विलायत जा रही हूँ । पिता जी के आदेश के अनुसार डाक्टरी सीख कर वापस आऊँगी । छः-सात वर्ष लग सकते हैं । तुम लोगों की गिरिस्ती में आकर मैंने जो तोड़फोड़ कर डाली है, वह सब इस बीच ठीक हो जायगी । मेरे लिए कुछ चिन्ता न करना । तुम्हारे ही लिए मेरे मन में बराबर चिन्ता बनी हुई है !'

दूसरी शर्मिला के लिए थी—

'दीदी, चरणों में सहस्र-सहस्र प्रणाम ! अज्ञानवश अपराध किया है, क्षमा करना । अगर इसे अपराध न मानो तो कम से कम यही जान कर सुखी हूँगी । इससे अधिक सुखी होने की आशा मन में नहीं रखूँगी । और सुख किसमें है, यही क्या भला मैं ठीक-ठीक जानती हूँ ! और अगर सुख न मिले तो नहीं सही । भूल करते हुए अब डर लगता है !'